ॐ

• श्रीराम-कथा •

संख्या—२२

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है।

(लव-कुश—काण्ड)

लेखक—
पं० मदनमोहन लाल शर्मा

लेखक—
नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न
पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण] सन् १९८२ [मूल्य १)

❀ ॐ ❀

प्रार्थना

मेरे शंकर बहुत बाहर रहे, अब घर में लाऊँगा।
'शिवाला' है हृदय मेरा, यहीं सादर बिठाऊँगा॥
जहाँ आह्वान 'गणपति' है जहाँ है भक्ति गिरितनया।
जहाँ है नाद का 'नन्दी' वहीं तुमको बुलाऊँगा॥
जलहरी में नयन की जो–भरा है प्रेमजल भगवन्।
तुम्हें भीतर ही भीतर–बस, उसी से मैं न्हिलाऊँगा॥
लगाऊँगा तुम्हारे भाल पै–जब शान्ति का चन्दन।
तभी मन, क्रम, वचन को विल्वपत्रों भी चढ़ाऊँगा॥
दिया है ध्यान की लौ का उसी से आरती होगी।
उठेगा शब्द अनहद में–वही घन्टा बजाऊँगा॥
तुम्हीं हो और मैं ही मैं, हूँ मैं ही मैं तुम्हीं तुम हो।
न तुम हो, और न मैं हूँ, यह निराली रट लगाऊँगा॥
है अब जो वाक् 'दासोऽहं'-ये तब हो जायगा 'सोऽहं'।
जभी 'दाकार' के तम को–कृपा पाकर हटाऊँगा॥
'दहन' में जो कि है 'मोहन'-'रहन' में जब वो आएगा।
तभी मैं विश्वमय हो अपने विश्वेश्वर को पाऊँगा॥

—:०:—

सीता–बनवास

अवध स्वर्ग सा बन गया–पाकर राजा राम ।
आज तलक विख्यात है रामराज्य का नाम ॥
समझी थी प्रभु ने प्रजा निज सन्तान–समान ।
प्रभु का भी कर रही थी–प्रजा पिता-सम मान ॥

चारों ही वर्ण और आश्रम–अपना कर्तव्य पालते थे ।
राजाज्ञा, गुरु के वचनों को–श्रद्धा के साथ मानते थे ॥
ब्राह्मण धर्मोपदेश देकर–सबका कर्तव्य बताते थे ।
क्षत्री–शासन की नीति समझ शासित का कष्ट मिटाते थे ॥
वैश्यों पर–था व्यापार भार—भण्डार देश का भरने को ।
शूद्रों में था सेवादि–भाव–उपकार देश का करने को ॥
सद्गुण सम्पन्न ब्रह्मचारी–गुरुकुल से शिक्षा लेते थे ।
कर्तव्य समझ अपना गृहस्थ गृह को उन्नति अति देते थे ॥

रहता था वानप्रस्थवर्ग तप करने में, तीर्थाटन में ।
सन्यासी-तत्ववेत्ता हो—लगते थे ब्रह्माराधन में ॥
पुरुषों का दल पुरुषार्थी था फिर सागर सद्भावों का था ।
चोला तो मनुज जाति का था, आचरण देवताओं का था ॥
देवियाँ देवियाँ थीं सच्ची जो पति को ईश मानती थीं ।
गृहिणी का मर्म जानती थीं, माता का धर्म जानती थीं ॥
विद्वान सभी था प्रजावृन्द, कोई अनपढ़, अज्ञान न था ।
ऊँचे दल में-अभिमान न था नीचे दल का अपमान न था ॥

शासन का रघुराज के था प्रधान यह मन्त्र ।
अटल धर्म पर सत्य पर रहे प्रजा का तन्त्र ॥

नियमों में ऐसी पोल न थी जिससे दुख पाती रहे प्रजा ।
राजा अपना आनन्द करे, रोती चिल्लाती रहे प्रजा ॥
यह था न नौकर मालिक हैं, नृप नाममात्र का नृपवर है ।
पर जाय प्रजा, अकाल पड़े, टल सकता नहीं राज कर है ॥
अब भी सन्तोष जनक शासन यदि कहीं देख लेते हैं हम—
तो 'राम-राज्य' ही की उपमा—उसको तुरन्त देते है हम ॥
कहना यह है वह 'राज्य-तन्त्र' हो चुका हमारे भारत में ।
जिसकी सराहना-आज तलक करते हैं लोग कहावत में ॥

जीव-जन्तुओं तलक का होता था नित न्याय ।
गुरुसम्मति, गुरुमन्त्रणा, लेते थे रघुराय ॥
एक दिवस सानन्द जब बैठे थे अवधेश—
राजनीति का दिया तब-गुरुवर ने उपदेश ॥
कहा—"अठारह व्यक्ति हैं, है जिनसे सम्बन्ध ।
राजाओं का उन्हीं से चलता राज्य-प्रबन्ध ॥

मन्त्री, ख़ज़ाञ्ची, सेनापति वेतनदाता, व्यापार—सचिव ।
युवराज, पुरोहित, द्वारपाल, बनरक्षक, कारागार—सचिव ॥
न्यायी, रसोइयाँ, अभिभावक, गुरु राजाज्ञा कहने वाला ।
दारोगा वैद्य महलवाली ड्योढ़ी पर नित रहने वाला ॥
हैं यह अठारह राज-अङ्ग, इनका विचार रक्खे राजा ।
अधिकार इन्हें दे, पर इन पर पूर्णाधिकार रक्खे राजा ॥
कर्त्तव्य नृपति का है यह भी इन सबसे बरते नीति सदा ।
चाहे भीतर से हो विरोध—बाहर से रक्खे प्रीति सदा ॥
ऐसा भी न हो—परस्पर में—होजाए अति लगाव इनका ।
कुछ गुप्तचरों द्वारा सदैव समझे सब गुप्त भाव इनका ॥
नीतिज्ञ नरेश वही तो है—जिसके सब अङ्ग निरोगी हों ।
शासन में तभी कुशलता है—जब कार्य-कुशल सहयोगी हों ॥

राजाओं में भी हुआ करते चौदह दोष ।
नष्ट किया करते वही, सेना. शासन, कोश ॥

अभिमान, झूठ आलस्य क्रोध अज्ञान, अनीति, नास्तिकपन ।
इन्द्रियसुख, मूर्खों से विचार, हठधर्मीपन, मन्त्रणा कथन ॥
विद्वानों का अपमान और जनमत का अवहेलन करना ।
अन्तिम चौदवाँ विलास, भोग—मद्यादिक का सेवन करना ॥

इन दोषों से सर्वदा—बचता रहे नरेश—
तो उसके राजत्व को. माने सारा देश ॥

यदि प्रजा निरीक्षक पापी हों, निर्दयी, घूँस लेने वाले ।
यदि गुप्तदूत अविचारी हों, झूठे सँदेश देने वाले ॥
यदि वैद्य गुरू हों चाटुकार, सेनानायक षड्यन्त्री हों ।
यदि बकवादी, मीठे कपटी राजा के सारे मन्त्री हों ॥

तो निश्चय सारे राज्य सहित वह राजा चौपट होता है ।
छोटी-छोटी भूलों से ही यह दारुण सङ्कट होता है ॥
इसलिए उचित है राजा को वह अपना राजापन समझे ।
है प्रजापाल पदवी उसकी इसलिए प्रजा का मन समझे ॥
रजनी में रजधानी देखे दिन में सच्चा न्यायेश्वर हो ।
व्यय से विशेष हो आय सदा वेतन भुगतान समय पर हो ॥
शासन का मर्म समझता हो ईश्वर के नियम मानता हो ।
किस तरह प्रजा रहती प्रसन्न—यह गुर परिपूर्ण जानता हो ॥
तो शासन की देवी सदव निःसङ्कट निर्भय रहती है ।
बच्चे-बच्चे की वाणी पर उस राजा की जय रहती है ॥

* गाना *

राज्य में जिसके अपनी अमान—वही राजा पाता है मान ।
सृष्टि—नियम में तो ईश्वर ही—है सबका सरताज ।
जनता की इच्छा से लेकर-नर बनता नरराज ।
सदा जो रखता इतना ध्यान—वही राजा पाता है मान ।
प्रजा शीश पर लेती है जब राजा का अधिकार—
तो राजा के सिर पर भी है—पूर्ण प्रजा का भार ।
प्रजा को जो समझे सन्तान, वही राजा पाता है मान ।
कहने को राजा राजा है, सिर पर उनका बास ।
लेकिन वास्तव में राजा है सदा प्रजा का दास ॥
हृदय में हो जिसके यह ज्ञान-वही राजा पाता है मान ॥
समझे जो घमण्ड में राजा प्रजावर्ग को नीच—
तो 'मोहन' सम्बन्ध न रहता—दोनों दल के बीच ।
समझता जो यह सत्य महान, वही राजा पाता है मान ॥"

—: ० :—

गुरुवर के वह वाक्य सुन, मुदित हुए रघुनाथ ।
कृतज्ञता के रूप में झुका दिया निज माथ ॥
इस प्रकार मुनिराज नित देते थे व्याख्यान ।
राजनीति कहते कभी, कभी ज्ञान-विज्ञान ॥
'राम-राज्य' का बज गया—डंका चारों ओर ।
दशरथ से भी बढ़ गए—दशरथ-राजकिशोर ॥
हम कहते हैं जो राज्य कथा—इसका उन्नत वह अवसर था ।
रघुकुलनन्दन के शासन का रवि तब मध्याह्नकाल पर था ॥
जनता के कारण निज सुख का बलिदान किया था राजा ने ।
सीता सी प्यारी नारी को—बनवास दिया था राजा ने ॥
राज-जननियों के सहित गुरुवर नीति निधान ।
शृङ्गी ऋषि के उन दिनों—घर पर थे मेहमान ॥
इधर राम का नित्य ही होता था दर्बार ।
करते थे रघुपति स्वयं सबका न्याय-विचार ॥
राजसभा का दूत था 'दुर्मुख' नामक एक ।
लाता था वह सभा में पुर सम्वाद अनेक ॥
आया लेकर एक दिन वह ऐसा सन्देश—
जिससे उसको भी हुआ मन ही मन अति क्लेश ?
खुद सोच रहा था दुर्मुख वह—कैसे सम्वाद सुनाऊँ मैं' ?
कुछ नहीं समझ में आता है क्योंकर वह वज्र गिराऊँ मैं' ?
मुँह जभी खोलता हूँ अपना तो हृदय मना कर देता है ।
रखता हूँ मुँह को बन्द अगर कर्तव्य खबर तब लेता है ॥
अच्छा दासत्व, प्रणाम तुझे, आगे यह काम न करना है ।
अब तो हूँ आज्ञा—बन्धन में आज्ञा का पालन करना है ॥

छाती तू पत्थर की हीजा, तब बोलूँ मैं उन बोलों को ।
वाणी, तू घोर घटा बन जा, तब बरसाऊँ उन ओलों को ॥
माता, तुम मुझे क्षमा करना अपना मत नहीं सुनाता हूँ ।
तुम जिस प्रकार सत् पर दृढ़ हो मैं भी कर्तव्य चुकाता हूँ ॥
इस भाँति हृदय बलवान् बना परिषद में अनुचर बोल उठा ।
'राजेश्वर' इतना ही कहकर—कुछ काँपा, फिर कुछ डोल उठा ॥
फिर कहा—"आज कुछ खबरें हैं इस समय क्षमा कीजिए मुझे ।
एकान्त समय में अर्ज़ करूँ—ऐसी आज्ञा दीजिए मुझे ॥"

बस इतना ही कह सका—दुर्मुख—मुख से बैन ।
आगे फिर वाणी रुकी, भरे नीर से नैन ॥
दशा देखकर दूत की बोल उठे श्रीराम—
"कह डालो क्या बात है ? रुकने का क्या काम ?

तुम तो हो सभा-दूत भाई दैनिक खबरें लाने वाले ।
एकान्त समय के फ़िक़रे हैं, सबको भ्रम पहुँचाने वाले ॥
यह सच है कोई बात आज—भीषण ज्वाला हो भड़की है ।
कारण इस समय अचानक ही मेरी भी छाती धड़की है ॥
वामाङ्ग फड़कते हैं सारे—बेचैनी बढ़ती जाती है ।
ऐसा अनुभव होता तन से आत्मा ही खिंचती जाती है ॥
फिर भी मैं आज्ञा देता हूँ जो कुछ हो प्रकट जरूर करो ।
"एकान्त समय में राम सुने'—इस भेदभाव को दूर करो ॥"

रोते रोते दूत तब—लगा सुनाने हाल ।
क्षीरसिन्धु में शेष ने दिया हलाहल डाल ॥
बोला—"पुरवासियों में उठ्ठा प्रश्न महान ।
जिसका श्रीरघुराज से है सम्बन्ध प्रधान ॥

रावण के कारण माता जी जो रही महीनों लङ्का में ।
बस इसी बात को दोष समझ कुछ लोग पड़े हैं शङ्का में ॥
कहते हैं--'धर्म-नीति-रक्षक, जब रघुकुलमणि की गद्दी है ।
तो पर-घर रह आने वाली नारी क्यों घर में रक्खी है ?
रैयत से पहले वाजिब है-अपने घर राज करे राजा ।
निर्दोष रहे जिसमें शासन वैसा ही काज करे 'राजा' ॥
शङ्कित-दल का यह आन्दोलन दिन पर दिन बढ़ता जाता है ।
रघुपति का इसमें चुप रहना दल का बल और बढ़ाता है ॥"

बहुत सँभाला राम ने सँभला नहीं शरीर ।
छुटते ही इस तीर ने दिया हृदय को चीर ॥
आखिर मुँह से निकल ही गई नाथ के हाय ।
देखा--पल्लव-सम गिरे--सीतापति रघुराय ॥
दौड़ भरत, शत्रुहन ने--लिया तुरन्त सँभाल ।
क्षण में चेतन कर दिया मिलजुलकर तत्काल ॥
लक्ष्मण के संकेत से—भङ्ग हुआ दरबार ।
तब बोले श्रीभरत से—राघव करुणागार ॥

"हे भैया भरत, सत्य ही है, मैं कभी राज्य के योग्य न था ।
बनवासी शासन क्या जाने ? वह कभी ताज के योग्य न था ॥
पर बीत गई सो बीत गई अब बिगड़ी बात सँभालो तुम ।
जो भार राम के सिर पर है--भाई हो, उसे उठालो तुम ॥
हम 'वानप्रस्थ-आश्रम' ही अब नियमों के सहित निभायेंगे ।
सीता के साथ बनों ही में निज जीवन शेष बितायेंगे ॥
सुनता था-'राज चलाना' में है एक खिलौना काले का ।
अब अनुभव खुद ही करता हूँ इस मकड़ी वाले जाले का ॥

इस कारण भरत सुन रहे हो, शासन लेलो रघुराई से ।
जो काम उचित है भाई के, बस वही कराओ भाई से ॥"

रोते-रोते भरत ने दी यूँ अपनी राय—
"सब प्रकार से बात यह अनुचित है रघुराय ॥

संसार कहेगा—नारी पर रघुवर ने सिंहासन त्यागा ।
एक ही चोट में हार गए, भारीपन, धीरजपन, त्यागा ॥
ऐसा करने से कुल की भी रघुकुलपति निन्दा होती है ।
राजेश भीरु ही बन जायें ? यह बात सरासर ओछी है ॥
हमको यह राज्य-भार देना—बालू में भीत उठाना है ।
जब कन्धा बढ़े डालते तो--छोटों का कहाँ ठिकाना है ?"

प्रभु बोले-"यह ठीक यदि तो फिर यही उपाय ।
प्रजा-हेतु सर्वदा को सीता त्यागी जाय ॥"
लक्ष्मण बोले-"व्यर्थ है यह सब राय उपाय ।
जाँच आँच से हो चुकी फिर भी त्यागी जाय ?

हे दीनानाथ, दया करिए, छाती छलनी हो जाती है ।
शब्दों की नहीं लड़ी है यह शूलों की लड़ी कहाती है ॥
निर्दोषिनी नारि दण्ड पाए, क्या यह अधर्म का काम नहीं ?
ऐसे कामों को करके क्या रघुकुल होगा बदनाम नहीं ?
अबला, अर्द्धाङ्गिनी, महासती, निर्दोष निकाली जाती है ।
पृथ्वी, आकाश देखते हैं ? कौशलपुर कितना घाती है ?
धिक्कार उस प्रजा-पालन पर जो यूँ सिर पर चढ़ जाय प्रजा ।
सन्तोष-पूर्ण शासन पर भी पूरा सन्तोष न पाय प्रजा ॥"

लषणलाल इस भाँति जब उठे क्रोध से गाज ।
भरत नम्रता से तभी बोले—"हे रघुराज !

लक्ष्मण भैया की सम्मति का मैं भी अनुमोदन करता हूँ ।
जो उस माता को त्याग रहा उस मत का खण्डन करता हूँ ॥
हम तरह-तरह की साक्षी से सबको सन्तोषित कर देंगे ।
माता में कोई दोष नहीं यह बात प्रमाणित कर देंगे ॥
दब जाना—ऐसे अवसर पर अपनी भीरुता बताता है ।
सच्चा चुप रहे समय पर तो झूठा सच्चा हो जाता है ॥
फिर नहीं हाथ वह आएगा जो हाथों से खो जाएगा ।
गृहलक्ष्मी को यदि त्यागेंगे तो गृह ऊजड़ हो जाएगा ॥"

बोल उठे सौमित्र फिर—"हमको तो है क्रोध ।
चलो प्रजा के सामने डट कर करें विरोध ॥"
कहा राम ने—"धैर्य धर सोचो छोटे राम !
खेल-खिलौना नहीं यह, है शासन का काम ॥

शासन जब तलक नहीं होगा अपनी इच्छाओं पर, मन पर—
तब तलक प्रभाव पड़ेगा क्या पुरजन परिजन पर प्रियजन पर ॥
जनता पर भेंट चढ़ा दूँगा, गृह लक्ष्मी क्या गृह जीवन में ।
पर उसकी इच्छा के विरुद्ध कर सकता कभी न शासन में ॥
जिस जगह आँच से जाँच हुई, आन्दोलन वहाँ न उट्ठा है ।
कपि, निश्चरदल विश्वास सहित—सीता पर श्रद्धा रखता है ॥
शङ्कित है अवध, इसी से मैं सीता का त्यागन करता हूँ ।
मन से सर्वदा असम्भव है—तन से यह साधन करता हूँ ॥
राजाज्ञा भाई की आज्ञा मस्तक पर धरनी है तुमको ।
सुनते हो ? कल ही बड़े भोर—यह सेवा करनी है तुमको ॥
'रथ में सीता को बिठलाकर बन-बीच छोड़ आना होगा ।
सूरज छुप जाने के पीछे वह खाली रथ लाना होगा ॥"

लक्ष्मण रोते रह गए गया हृदय भी डोल ।
लगे टालने, पर वहाँ चली न टालमटोल ॥
आज्ञा दे रघुवर उठे किया न और विचार ।
भरत लषण से उस दिवस हुआ नहीं आहार ॥
अपने मन्दिर के निकट सिर पृथ्वी पर टेक ।
मन ही मन चिन्ता लषण करने लगे अनेक—
"किस भाँति आज्ञा का पालन कर डाले आज्ञाकारी यह ?
किस तरह विसर्जन देवी का मन्दिर से करे पुजारी यह ?
है एक ओर आज्ञापालन दूसरी ओर सङ्कट अति है ।
निगले न बने उगले न बने वह साँप छछूँदर की गति है ॥
हे विधना साध्वी सीता पर क्या वज्राघात किया तूने ।
जो मङ्गल-आश दिनों से थी—उसमें उत्पात किया तूने ॥
तूही साक्षी था अग्निरूप फिर क्यों यह दिन दिखलाता है ?
जिसकी रक्षा की थी उसको जीते जी आज मिटाता है ?
गृहिणी का पद पाया जिसने वह त्याग आज क्यों अतिशय है ।
हे न्यायाधीश न्याय यह तो न्यायालय अन्यायालय है ॥
पूछे कोई उसके दिल से जिस पर ये आफत आती है—
पति सेवा करती हुई सती–पति द्वारा त्यागी जाती है ॥"
इन्हीं विचारों में लषण, लगे बहाने नीर ।
मति-गति सारी खो गई, पथरा गया शरीर ॥
दशा देखते थे छुपे–रघुनन्दन रघुनाथ ।
सम्मुख आए शीश पर धरा प्यार का हाथ ॥
बोले—"हे भैया हे लक्ष्मण रोना है कर्म अधीरों का ।
साहस से संकट सहे सदा कर्तव्य यही गम्भीरों का ॥

मैं स्वयं जानता हूँ सीता निर्दोषिनि निष्कलङ्किनी है ।
गुणखानी हैं क्षत्राणी हैं-विदुषी हैं जनकनन्दिनी हैं ॥
कहलो उससे सब कुछ कहलो जो उनको आज त्यागता है ।
उनका कोई अपराध नहीं फिर भी रघुराज त्यागता है ॥
रक्खेगा कोठीवाला साख घाटा जो हो सह जाएगा ।
उजड़े घरबार, किन्तु राजा राजापन नहीं मिटाएगा ॥
जिसके हर जाने से बन-बन पागल की भाँति विचरता था ।
जिसके छुटकारे की पृथ्वी लोकों से लथपथ करता था ॥
बस उसी प्राणप्रिय भार्या को अब त्रास दे रहा है राघव-
माङ्गलिक समय होने पर भी, बनवास दे रहा है राघव-
तुम देख रहे, मैं त्याग रहा, सुर-मुनि-नर नाग देखते हैं ।
जो नहीं त्याग के योग्य कभी, उसका सब त्याग देखते हैं ॥
तुम देख रहे मैं त्याग रहा यह त्याग न छुपकर करता हूँ ।
जो कुछ करता हूँ सीता पर वह सब अपने पर करता हूँ ॥
बस अब विलम्ब का काम नहीं आसन से मत डोलो लक्ष्मण !
अपने राजा से स्वामी से, अग्रज से, हाँ बोलो लक्ष्मण !"

जादू था उन्माद था, या होनी का फेर ।
'हाँ' कहने में लषण को लगी नहीं कुछ देर ॥
इस प्रकार जब कर चुके लक्ष्मण को तैयार-
तब पहुँचे रघुवंशमणि जनकसुता के द्वार ॥
बोले-"प्यारी भामिनी, छाया को दो ठौर ।
करना है जग के लिए थोड़ी लीला और ॥

जिन भक्तों के कारण मैंने गरुड़ासन त्यागा था अपना ।
कुश का आसन स्वीकार किया सिंहासन त्यागा था अपना ॥

जो सुरमण्डल बानर बनकर लंका से तुमको लाया है ।
इतराया है अपने बल पर इतना ज्यादा गर्वाया है ॥
कमले, तुम खूब जानती हो, है नाम गर्वहारी मेरा ।
करदूँ भक्तों का गर्व खर्व तब बोझ हटे भारी मेरा ॥
इसलिए—जनों के स्वार्थ हेतु अब फिर कुछ कर दिखलाना है ।
वैदेही के बच्चों द्वारा—उनका अभिमान मिटाना है ॥"

"जो आज्ञा" कह होगईं सीता अन्तर्ध्यान ।
छाया ने उस देह में किया निवास-स्थान ॥
छायारूपी सिया से—बोले तब रघुनाथ—
"वनयात्रा को प्रात ही—जाउ लषण के साथ ॥

उस दिवस बनों के चित्र देख तुम मन ही मन उमँगाती थीं ।
गंगा पर, पर्ण-कुटीरों पर, अपना अनुराग दिखाती थीं ॥
इच्छा तुम प्रकट कर रही थी—'जीवन में बन बिहार फिर हो ।
रुचती न मोतियों की माला वह ही मोतियाहार फिर हो ॥
कुश-शय्या हो फल भोजन हो, सत्संगति को मुनिमण्डल हो ।
जी बहलाने को आस पास—हिरणों के बच्चों का दल हो' ॥
वे ही अभिलाषाएँ—शायद मेरे भीतर मचलीं आकर ।
इस समय रूप में आज्ञा के मुख से बाहर निकलीं आकर ॥
अतएव सिधारो—प्राणप्रिये इच्छाएँ पूरी करने को ।
बन के उन पावन धामों में बनदेवी-सदृश बिचरने को ॥
आएँगे बड़े भोर लक्ष्मण सेवा में रथ भी लाएँगे ।
यह कार्य उन्हीं को सौंपा है, वे साथ तुम्हारे जाएँगे ॥
अच्छा, अब सीते प्रिये विदा जग में निर्मल चाँदनी रहो ।
यह राम तुम्हारा बना रहे, तुम सदा राम की बनी रहो ॥

इस प्रकार कह चल दिए व्याकुल दयानिधान ।
नींद न आई रात भर रहा सिया का ध्यान ॥
इधर लषण की भी कटी-रोते-रोते रात ।
अरुण-शिखा का शब्द सुन जागे जान प्रभात ॥
पहुँच शीघ्रता से गए—सीता माँ के पास ।
ज्यों-त्यों रथ के साथ में व्याकुल और उदास ॥
लक्ष्मण जी ने जिस समय आकर नाया शीस ।
माता की नाईं लगीं देने सिया अशीस ॥
फिर बोलीं—"रथ ले आए हो तो व्यर्थ अबेर नहीं अच्छी ।
यह मत अनुभवीजनों का है शुभ कृति में देर नहीं अच्छी ॥
कौशलपति की जो आज्ञा है वह आज्ञा मेरी इच्छा है ।
बरसों से बन के दर्शन की उर में उत्कट उत्कण्ठा है ॥
प्रायः मैं प्रभु से कहती थी मुनि-दर्शन करवाना स्वामी !
फिर एक बार प्राकृतिक दृश्य दासी को दिखलाना स्वामी !
इस समय उन्हीं अनुरोधों को कौशलपति पूरा करते हैं ।
हैं धन्य भाग इस दासी के करुणानिधि करुणा करते हैं ॥"
यह कहकर पति-पद सुमर, बैठी सिय सानन्द ।
रथ हाँका तब लषण ने कह 'जय रघुकुलचन्द' ॥
कौशल के राज-मार्ग से जब वह रथ निर्जन को जाता था ।
पीछे हटता था अन्धकार आगे प्रकाश दिखलाता था ॥
सचमुच उस दिन का वह तड़का, दुख-सुख से मिला सवेरा था ।
जङ्गल के लिए उजेरा था, महलों के लिए अँधेरा था ॥
प्रकृति-नदी में जब बहा रथ वह नाव-समान ।
नयनों से तब लषण के—बरसा मेघ महान ॥

नभ के तारे थे ज्योति-हीन, चन्द्रमा उदास हो रहा था ।
कण नहीं ओस के गिरते थे पृथ्वी पर व्योम रो रहा था ॥
दूसरी ओर लालिमा लिए सूरज रुक-रुककर उगता था ।
उन मोती जैसी बूँदों को अति शीघ्र हंस-सम चुगता था ॥
जब उज्ज्वल हुआ गगन-मण्डल तब नाचीं डालीं हिलमिलकर ।
अवलोक प्रकृति का यह रहस्य सब कलीं हँस पड़ीं खिलखिलकर ॥
पुष्पों के दल, वृक्षों को तज, रथ-पथ पर स्वयं बिखरते थे ।
पक्षी अपने मीठे स्वर से माता का आदर करते थे ॥

उसी समय वह रथ रुका गंगा जी के तीर ।
ठहरे सीता के सहित लक्ष्मण धर कर धीर ॥
न्हाये श्रद्धा के सहित बिनती की कर जोर ।
हाँक दिया फिर रथ तुरत सघन बनों की ओर ॥

कहने को वह बन बीहड़ था पर पावन पथ गङ्गा का था ।
मुनि वाल्मीकि के आश्रम को वह ही पथ शीघ्र पहुँचता था ॥
पथ भी कह सकते नहीं उसे कीकर-बेरी का जंगल था ।
आगे तो प्रकृति जानती थी जो उसके आगे मंगल था ॥
ऊँचे-नीचे खड्डे जग की उन्नति अवनति दिखलाते थे ।
रथ के पहिए गिरते पड़ते जीवन की चाल दिखाते थे ॥
धरती ऊबड़-खाबड़ तो थी, पर रथ को मार्ग दे रही थी ।
माँ जैसे बच्चे को लेती त्यों ही वह गोद ले रही थी ॥
चलती तो थी अत्यधिक वायु पर शीतल सुखकारी लगती ।
गर्जन बन-सिंहिनियों में थी पर कोयल-सी प्यारी लगती ॥
मानों बन नर से शासन ले नारी को दिया चाहता है ।
या सीता को पटरानी से बन-रानी किया चाहता है ॥

उसी विपिन में लषण ने बागडोर ली थाम ।
रथ से नीचे उतर कर माँ को किया प्रणाम ॥
रो उट्ठे शिशुवत् तुरत वही अश्रु की धार ।
इस घटना से सिया भी बोलीं धैर्य विसार ॥

"हे रघुकुल के छोटे राजा, क्यों रोते, क्यों अकुलाते हो ?
अपनी क्षत्राणी भावज में क्यों करुणा-रस उपजाते हो ?
क्षत्री के नेत्र—रुधिर ही की वर्षा से शोभा पाते हैं ।
घननाद जीतने वाले को—यह आँसू नहीं सुहाते हैं ॥
इसलिए धीरता धारण कर, सब छुपा भेद खोलो लक्ष्मण !
क्या सोच रहे ! क्या देख रहे, क्या चिन्ता है ? बोलो लक्ष्मण !"

माता के यह वाक्य सुन—रुका नैन का नीर—
तब लक्ष्मण कहने लगे धारण कर कुछ धीर—

"अच्छा होता—यदि लङ्का में—सो जाता शक्ति-बाण से मैं—
या रावण के रण-सागर में धो लेता हाथ प्राण से मैं ॥
यह दिन तो नहीं देख पाता जो जीता हुआ मर रहा हूँ ।
अपने मन-मन्दिर की माँ पर कुसमय आघात कर रहा हूँ ॥
कहने में थर्राती जिह्वा—चुप रहने में दम घुटता है ।
वह उदासीन ऋणिया हूँ मैं जो भीतर-भीतर लुटता है ॥
आज्ञा का बध्य भाई ने मारा है मुझ हतभागी के ।
यह अत्याचार धर्म-का है, जो सिर पर है अनुरागी के ॥"

बस इतना ही कह सके, वे छोटे रघुवीर ।
धीर हृदय पलयात्र में फिर होगया अधीर ॥

निकले सिंहनी गुफा से ज्यों अपने शिशु का रोदन सुनकर—
रथ से उतरी त्यों सिया मात लक्ष्मण का करुण-कथन सुनकर ॥

बोलीं—"भाई की आज्ञा को बहिन पहचान भूल की है।
उनकी वज्राज्ञा भी हो तो अपने को बड़ी फूल-सी है॥
वे मेरे और तुम्हारे क्या—सारे ही जग के हितकर हैं।
सूरजवंश राजेश्वर हैं, रघुकुल के गौरव, रघुवर हैं॥
वे बहिन कैसे छोड़ेंगे—जब दृष्टि विश्व के हित की है?
तुम धीरज धरकर यह कहदो दासी को क्या आज्ञा दी है?"

इन शब्दों से जब खिंची सकुचाहट की फाँस—
तब लक्ष्मण कहने लगे लेकर गहरी साँस—

"हे माँ साक्षात् रमा हो तुम, मन मन्दिर की प्रतिमा हो तुम।
महिमा हो तुम, सुखमा हो तुम, अणिमा हो तुम, गरिमा हो तुम॥
लङ्का में डङ्का बजा दिया, पर अवध-वध किए देता है।
वह वास अशोक-वाटिका का सारे शोकों का नेता है॥
भारत की ऊँची नारी का तुमने तो चरित दिखाया है।
पर अवध वासियों ने उसको अत्यन्त बुरा बतलाया है॥
वे कहते हैं—"परवशता में जब प्राण गँवा देती माता—
तो सच्ची पतिव्रताओं की पदवी को पा लेती माता॥
यह नहीं समझती मूर्ख प्रजा-आचार्य परीक्षा दी तुमने।
पति के हित निज प्राणों को रख, पति की भी पत रक्खी तुमने॥
है यही भेद जिसके कारण—भाई ने यहाँ पठाया है।
बेटे के हाथों ही उसकी माता को वन भिजवाया है॥

इतना कह सौमित्र जब हुए और बेचैन—
तब बोली अवधेश्वरी सीधे सादे बैन॥

"खुद भी क्षत्री होकर रोते, क्षत्राणी को भी रुला रहे।
वे बात बात को बढ़ा रहे, इतनी व्याकुलता दिखा रहे॥

मैं आज्ञाकारिणी कहलाकर–अबतक आज्ञा की भूखी थी ।
बड़भागिनि हूँ इस आज्ञा से–खिल गई कली जो सूखी थी ॥
पति के प्रत्येक दुःख-सुख में पत्नी ही हिस्सा लेती है ।
सीता–वन का सङ्कट सहकर–उनको यश, शासन देती है ॥
हे विधना, तू जो सच्चा है–तो साँच नहीं जाने पाए ।
वे शासन करें कुशलता से उनको न आँच आने पाए ॥
देवर, सानन्द लौट जाओ, प्रभु से प्रणाम कहना मेरा ।
साथ ही साथ इतना सँदेश उन चरणों में रखना मेरा ॥
"अवधेश्वर का कुछ दोष नहीं, वे इस लीला में बेवस हैं ।
सीता सब जगह उन्हीं की है वे ही सीता के सर्वस हैं ॥"
यह सुनते ही रो–उठे तो वे छोटे रघुराय ।
फिर बोले–"किसका अवध, कौन अवध को जाय !
चौदह वर्षों तक साथ रहा जैसे भाई की सेवा में ।
वैसे ही फिर भी हूँ तत्पर अपनी माता की रक्षा में ॥
रघुनाथ अवध का राज्य करें, मैं वहाँ नहीं अब जाऊँगा ।
इन चरणों ही की सेवा में जीवन सम्पूर्ण बिताऊँगा ॥
जनता अपना कर्तव्य करे, जिससे ऊँचा राज्यासन हो ।
राजा अपना कर्तव्य करे, जिससे जनगण-प्रिय शासन हो ॥
मैं भी कर्तव्य इधर अपना कर जाऊँगा इन चरणों पर ।
सेवा-व्रत पूरा पालन कर मर जाऊँगा इन चरणों पर ॥"
सीता फिर कहने लगी–"अनुचित है यह बात ।
उचित यही सब भाँति है–कौशल जाओ तात !
बच्चा-बच्चा भू-मण्डल का गुणगान तुम्हारा करे लषण !
रघुकुलनायक ही के समान-सम्मान तुम्हारा करे लषण !

आदर्श गुणों का हे देवर, तुममें अथाह भण्डार रहे !
तुम सच्चे भाई-भक्त रहो, भाई का तुम पर प्यार रहे ॥"

इस प्रकार आशीष-दे माता उठीं तुरन्त ।
विदा किया श्री लषण को समझाकर अत्यन्त ॥
हाँका तो रथ लषण ने किन्तु न हाँका जाय ।
शक्ति हीन घोड़े हुए, पाँव न उठते हाय ॥

ज्योतिर्मयि को बन में तजकर-अन्धों की नाईं जाते हैं ।
आगे को लषण बढ़ाते हैं—पर वे पीछे ही आते हैं ॥
जब शपथ राम की दी उनको तब ठीक राम के भक्त हुए ।
इस भक्तिभाव पर घोड़ों के लक्ष्मण भी तुरत सशक्त हुए ॥

जैसे-तैसे आगए-अवध सुमित्रालाल ।
रथ तज, भाई के निकट पहुँच गए तत्काल ॥
देखा-लेटे हुए हैं-रघुराई रघुवीर ।
बहा रहे हैं बेतरह-नयन-नेह का नीर ॥

ज्यों ही लक्ष्मण पर दृष्टि पड़ी चौंके, फिर बोले-"सिया कहाँ ?
जिसके विराग में प्राण दुखी-वह ही प्राणों की प्रिया कहाँ ?"
फिर सँभले, कहाँ-"छोड़ आए ! जो हुआ उचित था उचित हुआ ।
राजा होने में क्या सुख है यह राजा होकर विदित हुआ ॥

लषण, भ्रात तुम,सखा तुम, तुम, प्रिय तुम हृदयेश ।
आज हृदय की कहेगा तुमसे यह अवधेश ॥

दो फूल एक डाली पर थे, कुछ खुले हुए कुछ खिले हुए ।
टूटे ये निष्ठुर हाथों से—जो थे आपस में मिले हुए ॥
झोंके ने एक वायु ही के-कर डाले तितर-बितर दोनों ।
पथ ढूँढ रहे अपना-अपना-हो-होकर इधर-उधर दोनों ॥

यही दशा है राम की और सिया की तात ।
कहीं रहें, कुछ भी करें, सुख का गया प्रभात ॥

❀ गाना ❀

—०—

"राम की आँखों में हरदम, रम रही है जानकी ।
जानकी का राम है, और राम की है जानकी ॥
कौन कहता है तजा है जानकी को राम ने ?
राम की जाँ में जिगर में जब जमी है जानकी ॥
यह भला चमड़े के पुतले प्रीति तुड़वायेंगे क्या ?
राम को मालूम है उसकी सती है जानकी ॥
शक्ति बनकर प्राण में और ज्योति बनकर आँख में ।
देख ले आखर जगत्—अब भी बसी है जानकी ॥
सृष्टि की वेदी पै 'मोहन' ग्रन्थि-बन्धन एक है—
राम तब तक है बना, जब तक बनी है जानकी ॥"

—: ० :—

इधर बँधाई लषण ने ज्यों-त्यों प्रभु को धीर ।
उधर सिया के हृदय में उठी विरह की पीर ॥
रथ-सहित लषण जी थे जबतक तबतक कुछ दबी रही ज्वाला ।
जब रथ नयनों की ओट हुआ—भहराकर-भभक उठी ज्वाला ॥
उर अन्तर में यदि अमृत-सदृश प्रभु-छवि की तरी नींह होती ।
तो सीता की जीवन-शाखा—उस बन में हरी नहीं होती ॥
पर विधना का जो था विधान—होकर बस रहा वही बन में ।
वैदेही बनदेवी-समान-योगिन बनकर विचरी बन में ॥
उस शान्त प्रकृति में प्रिय पति का पूजन-प्रेमिनी लगी करने ।
पत्ते—पत्ते में प्रियतम का—दर्शन प्रेमिनी लगी करने ॥
मानो ब्रह्मा ने मथ—मथकर जग को निस्सार कर दिया है ।
निकला जो सार-'प्रेम' उससे सीता का रूप धर दिया है ॥

विरह घटा छा रही थी घुमड़ घुमड़ जब घोर—
बोल रहा था इस तरह विरहिन का मन मोर ॥

❀ गाना ❀

—०—

तुम कोशला में राजो राजाधिराज होकर ।
दासी रहेगी बन में स्वामी का काज होकर ।
त्यागा है तुमने उसको, जिसने तुम्हें न त्यागा ।
फिर फैसले को देखो—मुन्सिफ-मिजाज होकर ॥
दुख क्या है गर अवध में मिलता नहीं ठिकाना ।
बन दे रहा जगह है-विस्तृत—समाज होकर ॥
यह प्रार्थना है दोनों फिर भी जगत में चमकें ।
रघुकुल की लाज होकर, रघुकुल का ताज होकर ॥
"मोहन" तपेगा जितना उतना ही वह दिपेगा ।
बदलेगा रंग अपना—सोने का साज होकर ॥

—:०:—

तुम्हें तुम्हारी प्रजा—को दोष नहीं सुखधाम ।
दो सौतों का होरहा—था भीषण संग्राम ॥
'गृहलक्ष्मी' ने स्वामी के सँग चौदह वर्षों बनवास किया ।
इस भाँति राज्य की लक्ष्मी का अपमान कराया ह्रास किया ॥
अब डाह निकाला यूँ उसने जो बन में मुझे पठाया है ।
सम्पूर्ण रूप से रानी बन, जीवनधन को भरमाया है ॥
पृथ्वी पर मुझसी दुखी—नारि न होगी और ।
जिसको सारी उम्र भर मिली न सुख को ठौर ॥
वर वरने हेतु स्वयम्वर में पहले ही पितु को त्रास हुआ ।
फिर ज्योंही श्वसुरालय आई पति प्रियतम को बनवास हुआ ॥
रानी बनते तपसिनी बनी, कुटिया में रही महल बदले ।
जिस पर भी नहीं विधाता के काले काले बादल बदले ॥

अपमान लषण का कर डाला उस बन में 'मर्म-वचन' कहकर ।
खुद भी स्वामी का विरह सहा रावण की लङ्का में रहकर ॥
मेरे ही कारण प्राणनाथ, बेचैन रहे—कितने ही दिन ।
मेरे ही कारण–शोणित के दरियाव बहे कितने ही दिन ॥
इतने पर भी ग्रह-चक्कर ने सुख से न मुझे बिठलाया है ।
सीमा यों करदी सङ्कट की जो अब वन में भिजवाया है ॥
जिसने अपने जीवन भर में सुख चैन न देखा भाला हो—
माङ्गलिक-समय में स्वामी ने महलों से जिसे निकाला हो—
ऐसी दुखियारी नारी को हे वृक्षो, कहीं निहारा है ?
इतने कष्टों की मारी को बन–जीवों, कहीं निहारा है ?
सीता रह सकती नहीं—यों वियोग आधीन ।
नीर बिना संसार में कहीं रही है मीन ?

❀ गाना ❀

सारे सुख संसार दिखाए, सजनी सुखी सजन बिन नाँय ।
बादल गरज-गरज घिर छाए, खेती हरी झरन बिन नाँय ॥
पक्षी पिंजड़े में अकुलाए, सभी मौज गगन बिन नाँय ।
जीवन है बस जीवन धन से, जीवन जीवन-धन बिन नाँय ॥"

—: o :—

इन्हीं विचारों में हुईं जब अत्यन्त अधीर ।
आत्मघात करने चली तब गङ्गा के तीर ॥
हुईं कूदने को जभी उस जल में तैयार–
पीछे से तब कान में आई एक पुकार–
"सावधान, इस भाँति तुम करो न निज अवसान ।
आत्मघात से है नहीं कोई पाप महान ॥"

सीता ठहरीं, पीछे मुड़ कर देखा–कोई मुनि आते हैं ।
जो नाव डूबती हो–उसको माँझी ही पार लगाते हैं ॥
वे आने वाले नये नहीं--पहले के परिचित योगी थे ।
विख्यात आदि कवि भारत के ऋषिवर श्री वाल्मीकि जी थे ॥

वाल्मीकि आए जभी वैदेही के पास ।
योगेश्वर थे, योग से भेद गया सब भास ॥

बोले—"बेटी, धीरज रक्खो, यों प्राण गँवाना ठीक नहीं ।
सङ्कट में या संघर्षों में–पागल बन जाना ठीक नहीं ॥
तुम तो विदेह की पुत्री हो यों चिन्ता करना लज्जा है ।
झूठे अपयश का भाजन बन इस प्रकार मरना लज्जा है ॥
है यही तुम्हारा आज धर्म मिथ्यावादों का नाश करो ।
मिट जाएगी कलङ्क-रजनी रविकुल का उदय प्रकाश करो ॥
अनुचित है फिर भी कहता हूँ तुम खोटी बात कर रही हो–
जो गर्भवती होकर बेटी, जल में अपघात कर रही हो ॥"

जाग उठीं श्री जानकी सुनकर ऐसे बैन ।
फिर बोलीं मुनिराज से कर कुछ नीचे नैन ॥

"क्या था ! होगया मुझे क्या था ! क्या सचमुच डूब रही थी मैं ?
कुछ ध्यान नहीं क्या थे विचार, जिनमें अब तलक वही थी मैं ॥
वैदेही और चाहती थी रघुकुल की लाज बचाने को ।
जीवन ही में दूसरी बार--फिर पाति-व्रत दिखलाने को ॥"

इतने में बहने लगा—फिर नयन से नीर ।
देख न सके दयालु मुनि तप्त हृदय की पीर ॥
सोचा—"इस संसार की, है अलबेली चाल ।
कोई कहीं बहाल है—कोई है बेहाल ॥

जिसका पति अवध नरेश्वर है जो अवधेश्वरी कहाती है ।
वह ही मारी-मारी फिरती रहने को ठौर न पाती है ॥
आती है बड़ी हँसी मुझको विधना की उल्टी माया है ।
सब भाँति सती जो नारी है उसने ही दोष लगाया है ॥"

इन्हीं विचारों में रहे कुछ क्षण मुनि लवलीन ।
फिर सीता जी से कहा-"क्यों होती हो दीन ?
रहने को ठौर तुम्हें-बेटी, पत्ता-पत्ता दे सकता है ।
साक्षियाँ, तुम्हारे सतपन की-तिनका-तिनका दे सकता है ॥
चिन्ता को छोड़ चलो आश्रम-रहने को कुटी बना दूँगा ।
महलों की शोभा-मान-सहित-फिर महलों में पहुँचा दूँगा ॥"

इस प्रकार सीता-सहित ऋषि ने किया प्रयाण ।
आश्रम में होने लगा—नव कुटीर निर्माण ॥
सात्विक जीवन की सीमा पर-बस इस प्रकार पहुँची सीता ।
कुछ ऋषियों की नारियों सहित उस कुटिया में ठहरीं सीता ॥
मुनिवर ने यह चतुराई की, सीता का नाम छुपा डाला ।
है कौन ? कहाँ से आई हैं ? इन बातों पर पर्दा डाला ॥
'वनदेवी' कहने लगे सभी—पड़ गया नाम यह सीता का ।
ऋषि-कन्याओं का काम करें-होगया काम यह सीता का ॥
प्रायः हिरणों के बच्चों को—गोदी में सिया खिलाती थीं ।
गउओं के बछड़ों को बहुधा-नहलाती, नीर पिलाती थीं ॥
ऋषि-आश्रम की फुलवारी को खुद आप नराया करतीं थीं ।
उन छोटे-छोटे पौधों में—पानी पहुँचाया करतीं थीं ॥
वे तुलसी के वे बेले के, वे विल्व आँवले के बिरवे—
वे जुही, गुलाब, चमेली के केतकी, केवड़े के बिरवे ॥

बारहमासी-से हो होकर कुछ दिन में खूब लहक उट्ठे ।
बनदेवी का कर लगते ही बन के सब फूल महक उट्ठे ॥
हर ऋतु के फूल फूलने पर-कायम होगई बहार वहाँ ।
हर रोज हवा में रहती थी वीणा की सी झनकार वहाँ ॥

इस प्रकार जब कुटी में बीत गए कुछ मास—
तब मङ्गल का मोद का समय आगया पास ॥

गउओं हिरणों के बच्चों में आनन्द अपार हुआ पैदा ।
केलों बिल्वों के वृक्षों में कुछ अजब निखार हुआ पैदा ॥
भूतल की सभी वस्तुओं में—नूतनता आज समाई है ।
सुरमण्डल ने नभमण्डल से फूलों की झड़ी लगाई है ॥

झूम-झूम जब डालियाँ भूमि रहीं थीं चूम ।
तभी मची उस कुटी में—'पुत्र-जन्म' की धूम ॥

दो चार रोज में जान गए सब आस पास के नर-नारी ।
ऋषि आश्रम वाली बनदेवी हैं दो पुत्रों की महतारी ॥
ऋषि मण्डल में आनन्द हुआ, सत्सङ्ग सभाएँ खूब छिड़ीं ।
संकीर्तन, पाठ, यज्ञ आदिक धार्मिक चर्चाएँ खूब छिड़ीं ॥
गुरुवर ने नामकरण के दिन, 'लव' नाम सुनाया पहले का ।
फिर ऋषियों की सम्मतिद्वारा 'कुश' रक्खा गया दूसरे का ॥
श्रीवाल्मीकि को याद रहा जो वचन दिया था सीता को ।
सिलसिलेवार आरम्भ किया लिखना रघुकुल की गीता को ॥
वह रघुकुल की गीता क्या थी ! था आदि काव्य मुनिराई का ।
सिक्का है अब भी कवियों में उस कविता की सुघराई का ॥
सचमुच निर्मल चन्द्रायण है, वह वाल्मीकि की रामायण ।
भूमण्डल की तारागण है, वह वाल्मीकि की रामायण ॥

जिस रामायण के रहने से अब भी यह भारत उज्ज्वल है ।
उसकी परिपूर्ण लिखे महिमा-यह कहाँ लेखनी में बल है ?"
रामचरित्र लिखने लगे—मुनिवर सायं प्रात !
क्रम-क्रम से बढ़ने लगे लव-कुश दोनों भ्रात ॥
उँगली के बल कुटी में चले जभी चितचोर ।
सबको 'तोतल' बैन से दिया प्रेम में बोर ॥
ऋषि-बालाओं में, ऋषियों में, पलते थे दोनों राजकुँवर ।
राजसी-चाल से मन्द-मन्द चलते थे दोनों राजकुँवर ॥
चुपके से वेद उठा लाते—माँ के समीप पढ़ने लगते ।
जब कोई उन्हें छीनता तो आगे बढ़कर लड़ने लगते ॥
पुचकारी पर पुचकारे थे—चिल्लाने पर चिल्लाते थे ।
माता या गुरू मनाते जब तब कहीं तनिक मनुआते थे ॥
पतिभक्ता सीता को अब भी स्वामी का विरह रुलाता था ।
पर दोनों शिशुओं के कारण सुख सहित समय कट जाता था ॥
आठ वर्ष के होगए—जब दोनों ही भ्रात ।
मुनि तब समझाने लगे धर्म-कर्म की बात ॥
दोनों ही बतलाई विधि से करते थे नित्य कर्म अपना ।
विद्या के साथ बलार्जन भी समझे थे मुख्य धर्म अपना ॥
प्रायः सिंहों के बच्चों से उस वन में वे भिड़ जाते थे ।
अपने स्वाभाविक-बल द्वारा उनको नीचा दिखलाते थे ॥
गङ्गा में नित्य तैरते थे गोचरण के भी प्रेमी थे ।
माता का आदर करते थे, गुरु की सेवा के नेमी थे ॥
माँ भी अपनी समताओं से रखती थी कभी न रहित इन्हें ।
"बनदेवी" यह माँ को कहते-कुछ और नहीं था विदित इन्हें ॥

ऋषिवर वेदों के साथ-साथ क्षत्रिय-विद्या सिखलाते थे।
रामायण'—भी थोड़ी-थोड़ी वीणा पर नित्य गवाते थे॥

आश्रम में जिस दिवस भी, जम जाता ऋषिवृन्द—
वीणा पर तब बालके—गाते थों सानन्द॥

❀ गाना ❀

करो उस रामायण का गान। जहाँ है 'सीता चरित' प्रधान॥
त्याग राजसी-सुखों को रहीं स्वामि के साथ॥
बन में पति से छूट कर रटती थीं रघुनाथ॥
प्राण रक्खे पति का हित जान। जहाँ है 'सीता चरित' प्रधान॥
जग में मिलती हैं कहाँ ऐसी सतिया नार?
धर्म बचाया लंक में रावण को फटकार।
जानते मन्दोदरि, हनुमान। जहाँ है 'सीता चरित' प्रधान॥
पति ने मिलने के समय मूँद लिए थे नैन।
तब कूदी थीं आग में होकर अति बेचैन।
साक्षी दी पावक ने आन। जहाँ है 'सीता चरित' प्रधान॥
जिसके सुनने मात्र से होते कर्ण पवित्र।
रत्न—रूप है जगत् को ही सिया-चरित्र।
उसका "मोहन" करे बखान, जहाँ है 'सीता चरित' प्रधान॥

—: ० :—

—ॐ इति ॐ—

संख्या—२३

• श्रीराम-कथा •

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

(लव-कुश-काण्ड)

लेखक—
पं० मदनमोहन लाल शर्मा

लेखक—
नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तनकलाविधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न
पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण] सन १९८२ [मूल्य १)

प्रार्थना

अपार तेरी माया, माया है तेरी अपार ।
तू ही सगुण है, तू ही है निर्गुण, तू ही है लीलावतार ।
अपार तेरी माया० ॥ १ ॥

चरणों की रज से अहिल्या सी नारी–कर्तार दी तूने तार ।
वह तो शिला थी फ़क़त शाप हो की हम पाप के हैं आगार ॥
अपार तेरी माया० ॥ २ ॥

तूने ही शबरी के बेरों को खाया–दिखलाया यह प्रेमाचार ।
उद्देश्य तेरा सदा यह रहा है—संसार में हो सुधार ॥
अपार तेरी माया० ॥ ३ ॥

तूने ही ऐसा प्रजा प्रेम पाला—त्यागी सिया जैसी नार ;
'मोहन' तू लीलाएँ बहुविध दिखाता हरने को पृथ्वी का भार ॥"
अपार तेरी माया० ॥ ४ ॥

रामाश्वमेध

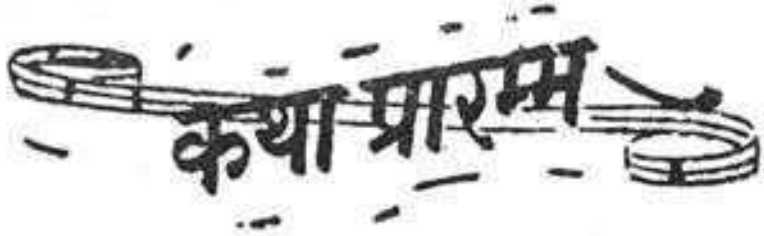

सीता के बनवास को बीत गए कुछ वर्ष ।
सीतापति के हृदय का—गया नहीं संघर्ष ॥
गुरु-आश्रम में एक दिन—बैठे थे सुखकन्द ।
योग-वशिष्ठ महान मुनि—कहते थे सानन्द ॥
अनिल, अनल, जल, धरणि नभ, इन सबका कर मेल ।
विश्वनियन्ता ने किया—निर्मित यह जग खेल ॥

चैतन्य और जड़ भागों में—बाँटा सम्पूर्ण सृष्टि को है ।
नियमित विधान के भीतर ही रक्खा सम्पूर्ण सृष्टि को है ॥
निर्माण किये हैं पञ्चतत्व, तो दश इन्द्रियाँ बनाई हैं ।
जड़ में चैतन्य मिलाकर यों, नाना योनियाँ बनाई हैं ॥
अपने ही अंशों को उनमें--ले आता है, ले जाता है ।
लीलामय अपनी इच्छा से लीला इस भाँति दिखाता है ॥

अंश मिला जब प्रकृति से—तब कहलाया 'जीव' ।
ज्ञान हुआ तो होगया—वह ही 'करुणासीव' ॥

व। तव में जीव ब्रह्म ही है, बेपर्द का पट है पड़ा हुआ ।
जिस तरह मृत्तिका से घट या भूषण-सुवर्ण से बना हुआ ॥
जब तलक बिन्दु को ज्ञान न हो तब तलक बिन्दु कहलाता है ।
होगया ज्ञान, तो क्षणभर में—बिन्दु ही सिन्धु हो जाता है ॥
पर ऐसा ज्ञान मिले क्योंकर ? सामने प्रकृति का चक्कर है ।
यह भूल भुलैयों वाला पथ अत्यन्त कठिन है दुस्तर है ॥
तब तलक 'जीव' को माया में क्षणभर भी चैन न आता है—
जब तलक साधनों के द्वारा—चञ्चल चित शान्त न पाता है ॥

योग यही, साधन यही, वश होजाए चित्त ।
तीर्थाटन, पूजन, भजन हैं सब इसी निमित्त ॥

चित के उलझे फन्दों ही की—कड़ियों को जो सुलझाता है ।
वह ही योगेश्वर कहलाकर अपने स्वरूप को पाता है ॥
चित ही में घर घरवालों का, वसुधा का मोह समाया है ।
इस जगत् जाल में बार-बार जिससे प्राणी भरमाया है ॥
सब कर्म जगत् के करते हैं चित पर भी पूरा शासन है !
सच्चे सम्राट् वही तो हैं जिन पर ऐसा सिंहासन है ॥

चित्त स्वप्न में भी नहीं हुआ किसी का मीत ।
रखता ऐसी प्रीति यह ज्यों बालू की भीत ॥

तुम तो अद्वैत, अखण्ड अमर, अज अविच्छिन्न, अविनासी हो !
जिस जगह चित्त की पहुंच नहीं, उस महान् पद के वासी हो ॥

धोखा है–जहाँ-जीव माया, या नाम रूप का गुनना है।
है वही बोधमय शान्तिधाम–कहना है जहाँ न सुनना है॥

❀ गाना ❀

अमर और अविचल है आत्मा हमारा।
सदा दृष्टि-द्रष्टा से दर्शन—से न्यारा!
वहाँ पर तनिक भी न वाणी का राम है।
लिखे कोई क्या, लेखनी में न दम है॥

न जब जन्म है, मृत्यु को बात ही क्या।
न उत्पत्ति ही है तो उत्पात ही क्या॥
न बैरी, न प्यारा, न भर्ता न दारा।
सदा सच्चिदानन्द का है सहारा॥

जहाँ रात--दिन का नहीं है झमेला।
प्रकाशित सदा ज्ञान—रवि है अकेला॥
न नानात्व का काम है लेश भर भी।
नहीं रूप है नाम है लेश भर भी॥

जहाँ मैं न तू, यह न वह दीखता है।
वहीं एक अनहद का स्वर गूँजता है॥
नहीं शान्त बैठा नहीं क्रोध में हूँ।
वहाँ हूँ वही हूँ महाबोध में हूँ॥

—(०)—

गुरुगृह में जब इस तरह-होता था सत्संग।
किया प्रकृति ने--उस समय थोड़ा-सा रस भंग॥
घबराकर आए लषण, बोले—"हे अवधेश।
पाप-पंक में धँस गया--सारा अवध-प्रदेश॥

कुछ दिन से मैं यह देख रहा—कौशल ने रंग बदल डाला ।
जिस गति से अबतक चलता था वह सारा ढंग बदल डाला ॥
हम भी हैं, और अवध भी है पर उस शोभा की छटा नहीं ।
अपने-अपने कर्तव्यों का—अब ध्यान प्रजा को रहा नहीं ॥
जिसके प्रताप से सृष्टि नियम नियमित प्रकार से चलता था ।
जिसके शासन से शासित हो सूरज चढ़ता था ढलता था ॥
राजा तो वही आज भी है पर आज राजश्री रोती है ।
सावन में लुएँ चलती हैं, फागुन में वर्षा होती है ॥
वर्णाश्रम-धर्म कर्म बदले, कुछ नीति-नियम बन्धन न रहा ।
वह निशा न रही, वह दिन न रहे, वह श्रम न रहा वह जन न रहा ॥

विस्मय है कुछ काल में बदल गए सब धर्म ।
पेट पालना रह गया—जीवमात्र का कर्म ॥

जो अंग वेदपाठी था—वह—बकवादी होता जाता है ।
जो वर्ण देश का रक्षक था—वह व्यसनी होता जाता है ॥
जो जाति दिव्य व्यवसायी थी वह व्यभिचारों में धाई है ।
जो जाति सबों की सेवक थी, वह सबके ऊपर आई है ॥
जो ब्रह्मचर्य-व्रतधारी थे, लौकिक सुख उनका कर्म हुआ ।
पत्नीव्रत रखने के बदले—पत्नी—त्यागन ही धर्म हुआ ॥
बालक लड़ते हैं वृद्धों से, आदर सम्मान नहीं करते ।
वृद्धों में पिछली बातें हैं, आगे का ध्यान नहीं करते ॥
मूर्खों का आदर होता है, पण्डित धिक्कारे जाते हैं ।
पाखण्डी—पापी—दुष्ट लोग स्वामी की पदवी पाते हैं ॥

जो हाथ स्वयं थे कलाकार, वह अब आश्रित हैं औरों के ।
अपने तो उद्यम खो बैठे लोभी हैं जूठे कौरों के ॥

केवल मौखिक ही नहीं कहता हूँ मैं नाथ ।
देता एक प्रमाण हूँ–समाचार के साथ–

दुर्भिक्ष इस तरह बार-बार, पड़ते थे नहीं अयोध्या में ।
पितु के जीते जी–पुत्र कभी, मरते थे नहीं अयोध्या में ॥
पर आज राजद्वारे पर ही दुख बैठा धरना दिए हुए ।
रोता है एक वृद्ध ब्राह्मण मृत-देह पुत्र की लिए हुए ॥
"जब सृष्टि-नियम में–कहता वह–ऐसा परिवर्तन होता है ।
तो एकमात्र उत्तरदाता राजा या शासन होता है ॥"
हठपूर्वक-यह भी कहता है—"मैं अपना न्याय चुकाऊँगा ।
जीवित बेटा ले जाऊँगा या प्राण गँवाकर जाऊँगा ॥"

लषणलाल की बात सुन—उट्ठे रमानिवास ।
आए गुरुवर के सहित उस ब्राह्मण के पास ॥
देखा जब रघुराज को आता अपनी ओर ।
व्याकुल ब्राह्मण ने कहे ऐसे वचन कठोर ॥

'हो चुके सगर, रघुराज, दिलीप-क्रम कभी न यह देखा अपना ।
जीता रह जाए बाप, और मरता देखे बेटा अपना ॥
हे राम तुम्हारे शासन में सब नियम बदलता जाता है ।
जी जलता है, सूरजकुल का सूरज अब ढलता जाता है ॥

चुभे राम के हृदय में–ब्रह्म-वाक्य–हो शूल ।
गुरु से पूछा–"किसलिए हुआ नियम प्रतिकूल ?"

श्रीवशिष्ठ जी होगए—ध्यान मग्न कुछ काल ।
तदुपरान्त—कहने लगे—इस प्रकार सब हाल ॥

'वास्तव में—एक शूद्र बैठा—अत्यन्त अधर्म कर रहा है—
विन्ध्याचल के गह्वर बन में ब्राह्मण का कर्म कर रहा है ॥
इस अनाधिकार ही के कारण-सब नियमित क्रम संवरण हुआ ।
दुर्भिक्ष अयोध्या में आया, ब्राह्मण-बेटे का मरण हुआ ॥

गुरुवर के यह वाक्य सुन, प्रभु होगए अधीर ।
तुरत चढ़ाया क्रुद्ध हो—निज धन्वा पर तीर ॥
एक बाण से शूद्र का जभी चढ़ाया शीश ।
ब्राह्मण का बेटा उठा, कहता—'जय जगदीश' ॥
चला गया ब्राह्मण जभी पुत्र सहित सानन्द ।
तब गुरुवर्य वशिष्ठ से बोले करुणाकन्द—

"किसलिए दास के शासन में—ऐसा अन्धेर हुआ भगवन् ?
जो अनधिकार का शूद्रों के हृदयों में बीज उगा भगवन् ?
वह क्या काली कर्तूतें हैं जिनसे कुरीतियाँ आई हैं ?
निर्मल अम्बर पर—कोशल के यह श्याम घटाएँ छाई हैं ?

पूजनीय अबतक रहे वेदादिक सद्ग्रन्थ ।
पर अब पैदा हो रहे नाना कल्पित पन्थ ॥

हरि-मन्दिर बने मौज-मन्दिर, तीर्थों में पाप प्रविष्ट हुआ ।
परहित करना भूला समाज, परधन हरना ही इष्ट हुआ ॥
जिसको देखो उसके भीतर स्वार्थ ही स्वार्थ है दीख रहा ।
बच्चा-बच्चा समाज का प्रभु केवल अपना हित सीख रहा ॥

अपनाया अपनों से सनेह, सीमित हो अपनी बाखर में ।
बन्दी होगया देश का हित, अपने हित के बन्दीघर में ॥
नेताओं में यह विष फैला—"क्यों मेरा ऊँचा नाम नहीं" ।
जनता स्वतन्त्र हो कहती है—'नेताओं का कुछ काम नहीं' ॥
यह सब चक्कर कुछ ऐसा है जिसने अनीति भर डाली है ।
रजनी का दिन कर डाला है दिन की रजनी कर डाली है ॥"

यह सुनकर गुरु ने कहा—"सुनलो कारण ठीक ।
ब्राह्मण के वध से गई बिगड़ धर्म की लीक ॥

कैसा ही कर्महीन, नास्तिक, पापों से मण्डित था रावण ।
फिर भी पुलस्त्य के कुल में था, ब्राह्मण था, पंडित था रावण ॥
उसको तुमने क्षत्री होकर संहारा जो युद्धस्थल में ।
वह ब्रह्मपाप, वह ब्रह्मदोष-आकर बैठा है कोशल में ॥"

प्रभु बोले—"उस पाप से किस विध हो उद्धार ?
"हो सकता है यज्ञ से"—गुरु ने किया विचार—

"रच जाए यज्ञ यदि 'अश्वमेध'—तो सारी बाधाएँ जाएँ ।
आनन्दामृत-धाराएँ-फिर-यह श्याम घटाएँ बरसाएँ ॥
पृथ्वी पर अपना-आर्यदेश धार्मिक तत्वों का नेता है ।
अपने सब दुष्कर्मों को यह यज्ञों द्वारा धो देता है ॥
जब-जब आपत्ति देश पर हो तो यज्ञ रचा देते हैं हम ।
अपनी प्रत्येक कठिनता को-इस भाँति हटा देते है हम ॥
वर्षा हित-वर्षा-यज्ञ यहाँ 'पुत्रेष्टि' पुत्र के हेतु यहाँ ।
नाना यज्ञों का है विज्ञान बतलाओ जग में और कहाँ ?

अतएव पाप के सङ्कट को—पुण्यों से आज हटाना है।
कर 'अश्वमेध' कोशल का फिर जग में डंका बजवाना है॥"
'जो आज्ञा' कहकर चले हर्ष—सहित अवधेश।
कहा मार्ग में लषण ने मैं भी कहूँ? नरेश॥
गुरुवर का कथन सत्य ही है, मति-गति भी यह ही कहती है।
पर मुझे और ही एक बात—अवनति का मूल दीखती है॥
निर्दोषिनि सीता त्यागी है यह बात आप भी जान रहे।
सतवन्ती के निर्वासन पर—राजाधिराज कुछ ध्यान रहे॥
उन गीली दुखती आँखों को—करुणेश भूल ही जायेंगे।
सौ अश्वमेध करने पर भी—कोशल में कुशल न पाएँगे॥

* गाना *

सोया है कौन सुख से? दीनों का दिल दुखाकर।
किसने बढ़ाया बल है? अबलाओं को सताकर॥
हर एक भोगता है अपने किए के फल को।
वह आम कैसे खाए? बोए जो नीम लाकर॥
रोती है यदि प्रजा—तो रोने दो उससे कहदो।
सीता का श्राप लेगा—बदले रुला रुलाकर॥
भूचाल हो या बहिया, दुर्भिक्ष हो या मारा।
रक्खेगा पाप कबतक—दुनिया दबा—दबाकर॥
भीतर हृदय के जिसकी—मूर्ति छिपी हुई है।
कहदो क्षमा करे वह—अपनी दया दिखाकर॥

—: ० :—

इन वचनों से लषण के विकल हुए रघुवीर।
नयनों ने ही दे दिया उत्तर भर कर नीर॥
पहुँचे राजद्वार पर—ज्यों ही राजा राम।
आज्ञा दी "आरम्भ हो अश्वमेध का काम॥"

नागरदल ने नानाविधि से नगरी को नया बना डाला ।
नूतन-नूतन निर्माणों से-सुरपुर को भाँति सजा डाला ॥
मणियों, मोतियों माणिकों से जगमग जब अवध सुहाता था ।
निशि में निशिनाथ लजाता था दिन में दिनकर सकुचाता था ॥

सजा रहे थे देश जब देश-भक्त साह्लाद ।
भेज रहे थे भरत भी सभी जगह संवाद ॥

गणिपति, सुरपति आदिक सब सुर, आए उस समय अयोध्या में ।
यम, काल, वरुण मारुत, कुबेर, आए उस समय अयोध्या में ॥
वाणी, रुद्राणी, इन्द्राणी, सम्पूर्ण शक्तियाँ भी आईं ।
महिलाओं जैसा वेष बना ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ भी आईं ॥
गौतम, कणाद, जावालि, कपिल, अङ्गिरा, अगस्त्य पधारे हैं ।
कश्यप, पाराशर, याज्ञवल्क्य, भृगु अत्रि, पुलस्त्य पधारे हैं ॥
नल, नील द्विविद, अङ्गद-समेत किष्किधापति सम्मिलित हुए ।
त्रिजटा, सुरसा के साथ-साथ श्रीलंकापति सम्मिलित हुए ॥
कहना है यही-महोत्सव में सब सुर-मुनि मण्डल आया है !
नर-वानर-दल, रजनीचर-दल, भूपति-भूसुर-दल आया है ॥

एक ओर होरहा था-अतिथि जनों का मान ।
उधर दूसरी दिशि हुआ-विधिवत् यज्ञ-विधान ॥

सरयू के तीर-यज्ञवेदी-रच गई पूर्ण सुघराई से—
तब अन्तरङ्ग में कुछ ऋषि मुनि बोले रघुवर रघुराई से ॥
"अवधेश, यज्ञ के होने में-आपसी धर्म की उल्झन है ।
'पत्नी बिन यज्ञ अधूरा है' शास्त्रों में ऐसा वर्णन है ॥

फलदायक यज्ञ तभी होगा—जब अर्द्धांङ्गिनि भी साथ रहे ।
बलदायक यज्ञ तभी होगा—जब अर्धांगिनि भी साथ रहे ॥
यदि जीवित हों जानकी कहीं तो उनको बुला लिया जाए ।
अथवा—करने को यज्ञ पूर्ण—दूसरा विवाह किया जाए ॥"

शब्द दूसरे ब्याह के—सुने क्लेश के साथ ।
दीन भाव से उसी क्षण—बोले दीनानाथ—

"राघव पर बड़ी कृपा होगी ऐसी न आप आज्ञा करिए ।
अन्यथा वचन-उल्लंघन का—पहले अपराध क्षमा करिए ॥
छिन जाए सारा राजपाट हो जाऊँ रङ्क, न डरता हूँ ।
सौगन्द पूज्य चरणों की है, मैं सत्य-सत्य ही कहता हूँ ॥
चाहे यूँही रहजाए यज्ञ, निज-निज गृह नृप-मण्डल जाए ।
चाहे सूरज कुल का सूरज—अपमान निशा में ढल जाए ॥
हिमगिरि हो चाहे ज्वालामुख विन्ध्याचल चाहे चल जाए ।
ज्वाला हो जाए सरयू जल, सरयू जल चाहे जल जाए ॥
बन जाए सिन्धु चन्द्रमा या चन्द्रमा सिन्धु में पट जाए ।
मेदिनी रसातल में पहुँचे तल वितल, तलातल फट जाए ॥
इतना विप्लव होने पर भी ऐसा उत्साह नहीं होगा ।
कोशलपति का इस जीवन में—दूसरा विवाह नहीं होगा ॥

पञ्चों में जिसको दिया अर्द्ध भाग का ठौर ।
उसका आसन—विश्व में कैसे लेगी और ॥

स्वामिनि जो अर्द्धभाग की है अर्द्धांङ्गिनि वही एक अपनी ।
वामाङ्ग जिसे बिठलाया है वामाङ्गिनि वही एक अपनी ॥

नारी के लिए एक पतिव्रत—जब वेदशास्त्र ने गाया है।
तो पुरुषों को भी पत्नीव्रत-गुरुजन ने एक बताया है॥
नारी को तेल नहीं चढ़ता, जब दूजी बार आर्य-जन में।
तो नर को भी वर्जित है फिर, कंगन का भार आर्य-जन में॥
इस कारण व्रत या इष्ट सदृश—है आन एक गठजोड़े की।
दो दिल हिल-मिलकर रखते हैं यह शान एक गठजोड़े की॥

❀ गाना ❀

हृदय एक है और मन एक ही है—
तो फिर फेर कैसा ? लगन एक ही है॥
नहीं छोड़ते टेक सर चाहे ही जाए।
सदा क्षत्रियों का चलन एक ही है॥
कहा हाथ पर हाथ रखकर जो हमने।
वो पञ्चों में माना वचन एक ही है॥
हृदय में जो रक्खा है-प्रतिमा की नाईं।
पुजारी का वह प्रेमधन एक ही है॥
बँधे ग्रन्थि बन्धन में दो ऐसे जीवन—
कि जिन दोनों का प्राण तन एक ही है॥
अगर एक ही जानकी का है दुल्हा।
तो इस राम की भी दुल्हिन एक ही है॥"

—: o :—

इस प्रकार जब राम का, सुना हृदय-उद्‌गार।
मुनि-मण्डल में भी हुआ थोड़ी देर विचार॥
सबकी सम्मति से हुआ निश्चित् तभी विधान।
'सोने की सीता बने' ले वामाङ्ग स्थान॥
सरयू के तट शुभ समय, छिड़ा यज्ञ का काम।
मख-मण्डल में मुदित मन बैठे राजाराम॥

बोले वशिष्ठ—"हे भरतलाल, अब लाओ विश्वविदित घोड़ा ।
श्वेताङ्ग, श्यामकर्ण वाला, श्रुति और शास्त्रवर्णित घोड़ा ॥
जो विश्व-विजय करके आए पृथ्वी के भूप पराजित हों ।
जय-जयी बनें जिससे रघुवर विश्वम्भर-पद पर शोभित हों ॥

"जो आज्ञा" कहकर चले कैकेयी के लाल ।
वर्णित घोड़ा—यज्ञ में—ले आए तत्काल ॥

तब किया विधान-सहित पूजन—उस घोड़े का रघुराई ने !
माथे पर उसके—पत्र एक लिखकर बाँधा रघुराई ने ॥
"कोशलपति अब सम्राट् हुए, जग की जनता स्वीकार करे ।
जो कोई घोड़ा रोके, वह रण में लड़ना स्वीकार करे ॥"
इस तरह यज्ञ का श्याम कर्ण—जब सजधज कर तैयार हुआ ।
तो पहली बार किधर जाए यह—मुनिगण-मध्य विचार हुआ ॥
कुछ ऋषियों ने रघुराई से-निज व्यथित हृदय की व्यथा कही ।
लवणासुर के अन्यायों की—न्यायी नृप से—सब कथा कही ॥
फिर मत देकर, अनुरोध किया—"पहले यह अश्व उधर जाए ।
सब भार भूमि का रहा सहा—लवणासुर-वध से हर जाए ॥"

सुनते ही—ऋषि-कष्ट को, पिघले राजिवनैन ।
बोले—श्रीशत्रुघ्न से रघुवर—ऐसे बैन—

"भाई, जो खलदल मुनियों को संकट-विपत्ति का दाता है ।
पृथ्वी-मण्डल में—वह मेरा पहला वैरी कहलाता है ॥
इस अश्वमेध द्वारा उसका सब मद हरना आवश्यक है ।
अपने जीवन में पाप रहित, पृथ्वी करना आवश्यक है ॥

इस हेतु लवणपुर में जाकर, लवणासुर से संग्राम करो ।
यदि नहीं दुष्टता छोड़े वह-तो उसका काम तमाम करो ॥
सुनते हो ? 'धर' के कारण से वह सहज न मारा जाएगा ।
लो यह अमोघ शर ले जाओ इससे संहारा जाएगा ॥"
यह कहकर मन्त्र-सहित प्रभु ने-शर दिया शत्रुघ्न के कर में ।
सुरराज इन्द्र के वज्र तुल्य-वह सजा शत्रुघ्न के कर में ॥
फिर बोले नाथ-"सुबाहु-सहित, प्रिय यूपकेतु को लेजाना ।
अपने इन दोनों पुत्रों को उसके पुत्रों से लड़वाना ॥
व्याधे को वधकर हे भैया ऋषिवध का बदला ले लेना ।
नगरी को-दो भागों में कर-दोनों पुत्रों को दे देना ॥"

'जो आज्ञा' कह, बड़ों को सादर नाकर माथ ।
शत्रुहनन को शत्रुहन—चले मना गणनाथ ॥

गज के समान रणमत्तसुभट-जब चले राम की जय करके ।
तब काँप उठे भयभीत हुए, छल और पाप दुनिया भरके ॥
आगे आगे था यज्ञ—अश्व पीछे अश्वारोही-दल था ।
शत्रुहन मध्य में थे-रथ पर,-सब ओर गजारोही-दल था ॥
रथ के भीतर दाँए बाँए—रिपुसूदन-तनय सुहाते हैं ।
मानो भुजदण्ड काल के यह—संसार जीतने जाते हैं ॥
सुरगण यह शोभा देख, देख, आनन्द भरे उमड़ाते थे ।
'रघुवर की जय' से—वीरों में उत्साह अपूर्व बढ़ाते थे ॥
इस भाँति अश्व के साथ कटक आया लवणासुर-नगरी में ।
मानो यम अपने गणों सहित धाया लवणासुर-नगरी में ॥

लवणासुर के क्रोध से नेत्र होगए लाल ।
अश्व-पकड़ने के लिए-आज्ञा दी तत्काल ॥

फिर बोला निज सैन्य से इस प्रकार ललकार ।
"वीरो, लड़ने के लिए--होजाओ तैयार ॥
क्या अच्छा अवसर हाथ लगा-घर बैठे भोजन आया है ।
दशरथ-सुत ने ज्वालामुख की--नगरी पर हाथ बढ़ाया है ॥
इसलिए मुझे यह कहना है--जननी का मान बढ़ा देना ।
दूधों की धारें पी हों तो शोणित की धार बहा देना ॥"
इतना सुनते ही हुआ सब खलदल तैयार ।
लड़ने को आगे बढ़ा—कर भीषण जयकार ॥
रावण ने कुम्भीनसी बहन, सादर जिसके पितु को दी थी ।
जिस मधुसुत ने--तप में तपकर शंकर से बड़ी शक्ति ली थी ॥
रण में--भिड़ जाने का साहस--जब उसमे किया शत्रुहन ने ।
तब रघुवंशी के जीवन का—'जयकार' सुनाया सुरगन ने ॥
वीरकेसरी की तरह--उधर शत्रुहनलाल--
बोले--अपनी सैन्य से इस प्रकार तत्काल--

❀ गाना ❀

"बढ़े चलो बहादुरो, कदम कदम दिलावरो ।
वतन का तन में है लहू, वतन की वह नजर करो ॥
देर अच्छा नहीं, खलदल को मिटाना है हमें ।
रक्त मेंहदी से इन हाथों को रचाना है हमें ॥
युद्ध के सिन्धु में बैरी को डुबाना है हमें ।
दैत्य का दबदबा मिट्टी में मिटाना है हमें ॥
वतन की शान पर जियो, वतन की मान पर मरो ।"

—: ० :—

इतने ही में--आगया निशचरदल उद्दण्ड ।
तभी वीरता से--भिड़ा कौशल-कटक प्रचण्ड ॥

मुठभेड़ सुजन की दुर्जन से—उस जगह बड़ी विकराल हुई ।
तीखे तीरों की वर्षा से फिर आज मेदिनी लाल हुई ॥
पृथ्वी डोली, आकाश हिला, तिस पर भी टोली डटी रही ।
रसिया वीरों के फागुन में—यह रण की होली मची रही ॥

पल में खल का वह गया नीर-समान घमण्ड ।
खण्ड-खण्ड होने लगा निश्चर-कटक अखण्ड ॥

'श्री यूपकेतु' के हाथों से क्षण में रिपुकेतु समाप्त हुआ ।
'मातङ्ग'—सुबाहुकुँवर द्वारा वीरो की गति को प्राप्त हुआ ॥
इन दोनों के मर जाने से—मर गए हौसले खल-दल के ।
युद्धस्थल तज कर भाग चले—सारे निश्चर रिपु-मण्डल के ॥
तब लवणासुर ने क्रोध सहित शत्रुहनलाल पर वार किया ।
रघुवंशी ने भी उसी समय वीरोचित विकट प्रहार किया ॥
कुछ त्योरी चढ़ी नेत्र चमके कुछ शब्द हुआ, जब बाण गया ।
उस लवणासुर से योद्धा का क्षण भर में पापी प्राण गया ॥
जिस समय दुर्ग पर निश्चर के रघुवंश 'पताका' फहराई ।
पृथ्वी-आकाश पुकार उठे—'जय कोशलेश जय रघुराई' ॥

दो भागों में बाँट कर—निश्चर-राज्य तमाम ।
'विश्वनगर' 'मथुरा' धरे रिपुसूदन ने नाम ॥
यूपकेतु को कर दिया विश्व नगर का नाथ ।
'मथुरा' पुत्र सुबाहु को दी उस समय के साथ ॥
जय पाकर श्री शत्रुहन चले दूसरे देश ।
अश्वमेध का विश्व को पहुँचाने सन्देश ॥
होते थे आधीन अब—बँधी इस तरह धाक ।
देश-देश में अवध की छाई विजय-पताक ॥

उधर शत्रुहन कर रहे थे साम्राज्य-प्रसार ।
इधर-अवध में राम के होते थे दरबार ॥
एक दिवस अवधेश ने जोड़ी सभा महान ।
बैठे सब सामन्तगण, यथायोग्य स्वस्थान ॥
गुरुजन-मण्डल, द्विज मुनि मंडल, शोभित रघुवर के दाएँ था ।
सुग्रीव, विभीषण प्रजा-सहित, सारा मन्त्रीदल बाएँ था ॥
पीछे की ओर भरत भैया रघुवर पर चँवर डुलाते थे ।
चरणों में बैठे महावीर-पद-पद्म दबाते जाते थे ॥
तभी पधारे लषण जी, सादर किया प्रणाम ।
कहा—"निवेदन एक है रघुकुल पति अभिराम ॥
साधु बालके, दो प्रभो, सुन्दर शोभाधाम ।
खड़े हुए हैं द्वार पर 'लव-कुश' जिनके नाम ॥
दोनों-दोनों वीणाओं पर-अनुपम वाणी से गाते हैं ।
साहित्य और संगीत सहित, सीता का चरित सुनाते हैं ॥
इस शुभ अवसर पर उनका भी आना स्वीकार किया जाए ।
आज्ञा होजाय सभा ही में दोनों को बुला लिया जाए ॥"
लगे सोचने इधर कुछ, कृपासिन्धु भगवान ।
उधर लषण करने लगे, लड़कों का गुणगान ॥
बोले—"दोनों ही सुन्दर हैं, मुखड़ों पर तेज विराज रहा ।
दोनों का एक स्वरूप देख, रवि-शशि का मंडल लाज रहा ॥
निर्भय हैं, निर अभिमानी हैं, निर्लोभी हैं, निश्छल दोनों ।
कोमल होने पर भी रखते-केहरियों का सा बल दोनों ॥
रत्नों का रँग दमकता है उन धूलि-धूसरित चेहरों पर ।
बाना बनवासी का है पर राजसी तेज है मुखड़ों पर ॥

चितवन से क्षत्रीपन के कुछ तौर समझ में आते हैं ।
कटि पै लङ्की लट के नीचे तर्कश के चिन्ह सुहाते हैं ॥
नगरी में उनके गायन से—सीता पर श्रद्धा बढ़ती है ।
जो दृष्टि कभी पृथ्वी पर थी, वह अब अम्बर पर चढ़ती है ॥
पिछली घटना पर, जनमण्डल अति पश्चाताप कर रहा है ।
सुमिरन की नई सुमरनी पर, माता का जाप कर रहा है ॥
इसलिए विदित यह होता है—जादू है उनके बोलों में ।
अवतीर्ण हुए हैं देवदूत—मानों इन तपसी चोलों में ॥

मणि,माणिक,मुक्ता तड़ित रवि शशि लिए निचोड़ ।
तभी रचयिता ने रचा दोनों का यह जोड़ ॥

भस्मी से भरे हुए मुखड़े भावुक मन को चुभ जाते हैं ।
मायापट के भीतर—मानों दो ईश्वर-अंश सुहाते हैं ॥
उपमा में एक दूसरे की—बस, एक दूसरा आएगा ।
सहस्रानन भी यदि खोजेगा तो उनसा उनको पाएगा ॥
छोटी-छोटी वीणाओं पर उँगलियाँ इस तरह जाती हैं ।
जिस तरह सुरतियाँ मुनियों की—अनहद के पट पर धाती हैं ॥
बँधता है तार तान का जब—तब राग प्रकट हो जाता है ।
उन सात स्वरों का एक ग्राम, बस चौदह भुवन जगाता है ॥
इसलिए दुबारा विनती है, बुलवाना उनका स्वीकृत हो ।
ऐसे स्वर्गीय गान द्वारा—यह राजसभा भी जागृत हो ॥"

'बुलवाओ' इस तरह का हुआ राज-संकेत ।
आए दोनों बालके वीणा वाद्य समेत ॥
झपक उठी सारी सभा देखे जब वे रूप ।
मानो प्रातःकाल की—फूट उठी हो धूप ॥

राजा को अपना पूज्य समझ दोनों ही शीश नवाते हैं ।
तब मन्त्री सुघर आसनों पर प्रभु के सम्मुख बिठलाते हैं ॥
आसन पर पीछे से बैठे—पहले हर दिल में बैठ गए ।
आते ही वह पद प्राप्त किया-आँखों के तिल में बैठ गए ॥

प्रभु ने पूछा—"कौन हो ?" बोले—"संगीतज्ञ ।
आगे कला बतायगी, हैं कितने मर्मज्ञ ॥

राजेश्वर, प्रकट रूप में जब दो बाल तपस्वी प्रस्तुत हैं ।
फिर प्रश्न कौन हो, यह अक्षर, हम दोनों को अद्भुत से हैं ॥"
कुछ हँसकर रघुवर बोल उठे—"मेरा केवल यह कहना है—
तुम किसके सुन्दर बालक हो ? क्या पूरा नाम पिता का है ।
उत्तर यह मिला-"सबों का जो पोषण या पालनहारा है—
हम भी उसके ही हैं जग में जो जग का सिरजनहारा है ॥"
प्रभु ने फिर मुस्काकर पूछा-"शिशु हो तुम किसकी गोदी के ?"
तब स्वाभिमान से वे बोले—"हम बेटे हैं वनदेवी के ॥"
"किसके चेले हो"-यह सुनकर उत्साह बढ़ा उन शिष्यों में ।
"गुरुदेव हमारे वाल्मीकि"-यह कहा करारे शब्दों में ॥
फिर कहा-"न राजसभा जैसा हम वाक्य-विवेक जानते हैं ।
रमते दो साधु बालके हैं, धुन अपनी एक जानते हैं ॥
इस समय उमङ्ग उठ रही है, कुछ सुनना हो तो सुनिएगा ।
हम "सीता-चरित सुनाते हैं उस पर ही ध्यान दीजिएगा ॥"

यह कहकर छेड़े तुरत वीणाओं के तार ।
मस्त हो गया एक ही गत पर सब दरबार ॥
मोड, मुकियाँ, गिटकिरी तान, अलाप-मिलाप ।
प्रकट हुआ साक्षात् सब मानों कला-कलाप ॥

श्रीगणपति को सिर नवा गुरुवर का धर ध्यान ।
लगे सुनाने बालके—अपना गीत प्रधान ॥
"आर्य जगत् में विदित है मिथिला नामक देश ।
स्वामी जिसके हैं जनक, जग-विख्यात-नरेश ॥
राजनीति के साथ में ब्रह्मज्ञान की खान—
मिलते हैं जग में नहीं, ऐसे नृपति महान ॥
रक्खा करते देह में देही से जो नेह ।
उनको ही इस जगत् में कहते लोग विदेह ॥
पड़ गया अचानक एक समय भारी अकाल रजधानी में ।
तब हल लेकर वे ही विदेह आकर डट गए किसानी में ॥
उस समय एक घट के कारण नृप का हल कर से छूट गया ।
श्री जगज्जया अवतीर्ण हुईं, भ्रम का भाँडा भी फूट गया ॥
जिसके भृकुटि विलास में लय होता संसार ।
वही शक्ति बालिका, करती चरित अपार ॥
क्या लीला है! जो त्रिभुवन में लाखों लीला दिखलाती है ।
वह ही मिथलेश्वर-पुत्री हो मिथिला में पाली जाती है ॥
पृथ्वी के ऊपर आकर जब—अद्भुत सब काम हुए उसके ।
तब सिया, जानकी, वैदेही, सीतादिक नाम हुए उसके ॥
नित्यप्रति अब तो वही सिया देवी-पूजन को जाती थीं ।
पति धर्म और गृह की शिक्षा माता के द्वारा पाती थीं ॥
पूर्ण शक्ति ने एक दिन परिचय दिया प्रचण्ड—
उठा लिया क्षण मात्र में शङ्कर का कोदण्ड ॥
तब बुद्धिमान मिथिलेश्वर ने इस भाँति प्रतिज्ञा कर डाली—
अब इसे विवाहेगा वह ही जो हो इससे भी बलशाली ॥

पुत्री ने जिसे उठाया है—उस धन्वा को जो तोड़ेगा ।
वह ही सीता के साथ-साथ मिथिला से नाता जोड़ेगा ॥
उस दिन ही से जग के योद्धा तोड़ने धनुष को आते थे ।
टूटना कहाँ पृथ्वी पर से तिल भर भी हटा न पाते थे ॥
थक गए स्वयंवर के रण में जब देश देश के बलधारी ।
तब विश्वामित्र महामुनि का—जीता था एक ब्रह्मचारी ॥
रघुनन्दन रामचन्द्र ने—उस शिव-धन्वा को तोड़ा है ।
इस भाँति विश्व की विजय सहित सीता से नाता जोड़ा है ॥

गृहलक्ष्मी को अवध में यदपि मिला था हर्ष ।
सास श्वसुर पति-भक्ति में—बीते थे कुछ वर्ष ॥

पर कालचक्र-कारण आगे सम्पूर्ण सुखों का ह्रास हुआ ।
कैकेयी द्वारा रघुवर को—चौदह वर्षों बनवास हुआ ॥
इस समाचार ने सीता की छाती पर वज्र प्रहार किया ।
उस अवसर विदुषी महिला ने मन में इस भाँति विचार किया ॥
जब तन-मन-अन-धन-जन-जीवन योगी बन-बन बन धाएगा ।
तो इस अर्द्धाङ्गिनि का शरीर—महलों में क्या रह पाएगा ॥
हो सकती नहीं कदापि कहीं पानी से लहर पृथक् जग में ।
देखी है कभी किसी ने भी लोचन से नज़र पृथक् जग में ?

धाईं रघुवर के निकट, और नवाया माथ ।
कुछ लज्जा कुछ हठ विवश बोलीं—"जीवननाथ ॥

कैकेयी माँ की आज्ञा का कैसे पालन हो पायेगा ?
जब आधा तन बन जाएगा आधा घर पर रह जायेगा ?
इसलिए जिसे नाथा नथ से सँग उसे नाथ ले चलिवेगा ।
पञ्चों में जिसका हाथ गहा, बस उसे साथ-ले चलिएगा ॥"

रघुवर बोले–"यह कथन है सब भाँति उदार ।
पर, ले चलने में तुम्हें बाधक एक विचार ॥
सीते, तुमसी गृहलक्ष्मी का, तपसिनी बनाना ठीक नहीं ।
कोमला, कमलिनी, अबला को बन-बन भटकाना ठीक नहीं ॥
बन में फिरते हैं व्याघ्र व्याल, रजनीचर बनचर रहते हैं ।
कङ्कड़-पत्थर-पूरित पथ है, सङ्कट पग पग पर रहते हैं ॥
सिया नयन में नीर भर, रहकर क्षण भर मौन ।
बोली–"दासी के लिए अबला कहता कौन ?
जो पति पद की सेवकनी है, वह तो सुखिया से बढ़कर है ।
जो साथ रहे स्वामी के वह, अबला–सबला से बढ़कर है ॥
जैसी मति-गति पति की होगी, वैसी ही पत्नी की होगी ।
पति यदि बनदेव बने वन में तो पत्नी बनदेवी होगी ॥
स्वामी यदि क्षत्रीसुत हैं तो, दासी क्षत्राणी वाला है ।
रघुवीर खलों को तेज-रूप, तो सीता–उनको ज्वाला है ॥
श्रीकैकेयी मात ने किया उचित ही काज ।
होना ही चाहिये था—भरतलाल को राज ॥
जो वनचर आदिक के भय से, निज पत्नी तक को तजते हैं ।
इस बड़ी अयोध्या की रक्षा–वह किस प्रकार कर सकते हैं ?
दासी आज्ञा—पालन करने कौशलपुर में रह सकती है—
पर इसका नहीं भरोसा है आत्मा उर में रह सकती है ॥
उद्यापन, पूजन तीर्थाटन, आराधन, हे भर्तार तुम्हीं ।
इस नैया के पतवार तुम्हीं, इस पार तुम्हीं, उस पार तुम्हीं ॥"
झड़ी आँसुओं की बँधी, बस इसके उपरान्त ।
'अच्छा तो तुम भी चलो' बोले सीताकान्त ॥

लषणलाल आए तभी सुन कर यह सम्वाद ।
वह भी वन-संगी बने कुछ विवाद के बाद ॥
तपसी बनकर चले जब-लषण-जानकी-राम ।
पहली निशि सबने किया, तमसा-तट विश्राम ॥
आगे चल कर केवट द्वारा जब तीनों गङ्गा—पार हुए ।
तब उतराई के देने में रघुनन्दन कुछ लाचार हुए ॥
उस समय अवस्था रघुवर की सीता ने जब अवलोकन की ।
निज कर से मणि-मुँदरी देकर कर डाली स्वामी के मन की ॥
कितनी हैं संसार में ऐसी बुद्धि-उदार ?
निज मन से जो जानलें पति के मन का सार ॥
बिना कहे फिर स्वामि के कर डालें प्रिय काज ।
जिसमें पति सन्तुष्ट हो और न जाए लाज ॥
वही अँगूठी लगा जब देने प्रभु का हाथ ।
चरणों को छूकर कहा केवट ने 'हे नाथ' !
कितने ही सन्त-साधुओं को-सेवक ने पार लगाया है ।
सबने ही ज्ञान-विवेक दिया, दी नहीं किसी ने माया है ॥
अब तुमसे भी हे तपसीवर, वह ही उतराई हे लेना—
मैंने गङ्गा को पार किया, तुम भव से पार लगा देना ॥"
तदुपरान्त रमते रहे, वन में सियानिवास ।
चित्रकूट में कुछ दिनों-जमकर किया प्रवास ॥
वहीं भ्रात श्री भरत से—भेंट दयानिधान ।
दुष्ट जयन्ता का हरा-उसी जगह अभिमान ॥
फिर आगे अत्री से मिल कर जब पंचवटी अपनाई थी ।
रावण की भगिनी शूर्पणखा तब वहीं अचानक आई थी ।'

उस समय विदित यह किसको था, राघव यह कर दिखलाएँगे ।
लक्ष्मण द्वारा उस नारी के नासिका-कर्ण कटवाएँगे ॥
पर यहाँ बात वास्तव यह थी, दुष्ट को दण्ड दिलाना था ।
पापों से वंचित रखने को परिपूर्ण कुरूप कराना था ॥

खरदूषण आदिक लड़े आकर विविध प्रकार ।
किन्तु अन्त में राम ने दिया सभों को मार ॥

तब वह राक्षसिनी सूर्पणखा, घबराकर पहुँची रावण पर ।
सब व्यथा सुना डाली अपनी, दोषारोपण कर लक्ष्मण पर ॥
शूरत्व, विचार, विवेक, धैर्य-रावण ने सब सम्वरण किया ।
तापस का वेष बना डाला, चोरी से सीता-हरण किया ॥
उस हरण-समय दशकन्धर ने-जब अपना नाम सुनाया था ।
तब आदिशक्ति ने भी-उसको ज्योतिर्मय रूप दिखाया था ॥
जब पहचाना सीता माँ को, तब सिर नाकर लङ्का लाया ।
प्रासादों में अनुचित समझा, वन में अशोक के ठहराया ॥
लङ्का में रहकर भी सीता-थीं पतिव्रत में भरपूर सदा ।
रहता है कमल-पत्र जैसे जल में भी जल से दूर सदा ॥

सिया हरण से राम को-हुआ इधर सन्ताप ।
विरही पुरुषों के सदृश, वन में किया विलाप ॥
आगे चल सुग्रीव से बढ़ा मैत्री-भाव—
वहीं-बालि को मारकर उसे बनाया राव ॥

राजा बनते ही वानरपति-राज्योन्माद आसक्त हुआ ।
माया के पति को भूल गया, माया का पूरा भक्त हुआ ॥
तब कौशलपति ने प्रीति-सहित, कर्तव्यस्मरण कराया था ।
कपिपति ने सीता खोज हेतु कपिदल सर्वत्र पठाया था ॥

जिस समय अशोक वाटिका में, प्रणवीर पवनसुत पहुँचे थे ।
तब सती, साध्वी सीता के, आचरण आँख से देखे थे ॥
छुप छुपकर वह संवाद सुना जब रावण लालच देता था ।
बदले में राजसिंहनी से धिक्कार-बराबर लेता था ॥

दशमुख जब कह रहा था-"सुन सीता, धर ध्यान ।
मुझसा कोई दूसरा और नहीं बलवान ॥

मैं ही तो ऐसा राजा हूँ—जिसकी सोने की लंका है ।
मैं ही तो ऐसा योद्धा हूँ—जिसका पृथ्वी पर डंका है ॥
मायापति भी जिसके डर से मायापट में छुप बैठा है ।
वैदेही, वह ही दशकन्धर—तेरी प्रिय दृष्टि चाहता है ॥"

सीता तब कह रही थीं-"अरे दुष्ट ! हो मौन ।
मिथ्या भाषण से भला-वीर बना है कौन ?

मैं वह हूँ-जिसने एक समय, शंकर का धनुष उठाया था ।
तू वह है-जिसने उस धनु को, छूने में भी भय खाया था ॥
मैं उसकी हूँ जिसने शिव-धनु दो टूक तुरत कर डाला है ।
तू वह है-जिसने चोरी से-पर-नारी को हर डाला है ॥"

सहन नहीं दशवदन से हुए जभी ये बैन—
खड्ग खींचली उसी क्षण लाल कर लिए नैन ॥

बोला-"जो फिर असभ्यता की-तो चन्दा-सी रह जाएगी ।
इस तेज खड्ग की धारा में तृण के समान बह जाएगी ॥
यदि मेरी हो जाएगी तो, सब जग में तू जगमग होगी ।
अन्यथा जीभ के साथ साथ यह गर्दन अभी अलग होगी ॥"

कहा गरजकर सिया ने-चुप हो पापी नीच ।
सिन्धु सदा ही सिन्धु है, कीच सर्वदा कीच ॥

तू बीसों हाथों से अपने यदि खड्ग तोलकर आएगा—
तो भी सतवन्ती सीता के सतपन को डिगा न पाएगा ॥
वंशज पुलस्त्य मुनि का होकर क्यों कुल का नाम डुबाता है ।
अपनी यह लाल लाल आँखें अबला के लिए दिखाता है ॥
हाय ! ब्राह्मण—जाति में पैदा हुआ कलंक !
चाण्डालों का आचरण करता है निश्शंक ॥
वेदध्वनि वाली वाणी से—अपशब्द निकाले जाते हैं ।
रहते थे जिनमें यज्ञ स्रुवा वे हाथ खड्ग चमकाते हैं ॥
शुभ कर्मों का नेता होकर—दुष्कर्मों के घेरे में है ।
हा ! ब्राह्मण-कुल के क्षीण तेज, मिट गया किस अँधेरे में है ॥
अब भी कुछ बिगड़ा नहीं, छोड़ बुद्धि का पाप ।
प्रभु के आगे हृदय से, करले पश्चाताप ॥
अपने को बना पुण्यशाली, सीता को प्रभु के अर्पण कर ।
अपनी अबतक की करनी का पुण्यों के जल से तर्पण कर ॥
अन्यथा चिताए देती हूँ, यह खड्ग तुझे न तारेंगी ।
मक्खियाँ तलक तेरे शव को भिनभिन स्वर से धिक्कारेंगी ॥"
वही हुआ जो शक्ति ने दिया दुष्ट को शाप ।
ले बैठा—सब अन्त में उसे उसी का पाप ॥
इसके ज्ञाता हैं पवनतनय, फिर स्वयं पवन भी साक्षी है ।
पृथ्वी-नभ के मध्यस्थल में, घटना यह प्रकट घट चुकी है ॥
उस लीला के कुछ काल बाद-इस भाँति पूर्ण संवरण हुआ ।
कौशलाधीश के हाथों से लङ्काधीश्वर का मरण हुआ ॥
सती सदा सत् पर रही, किया सत्य पद प्राप्त ।
जिसने उसको दुख दिया-वह होगया समाप्त ॥

इतने पर भी राम को—हुआ न उसका ज्ञान ।
आईं जब वे सामने—कर डाला अपमान ॥
वानर-मण्डल से भरा-पुरा—रण की जय का दर्बार हुआ ।
लाखों जीवों के सम्मुख वह, सत् परिचय का दर्बार हुआ ॥
आसन बाईं दिशि नहीं दिया 'श्रीजी' को जब श्रीरघुपति ने ।
तब लक्ष्मण को यह आज्ञा दी—उस सतवन्ती की सत्मति ने ॥
"देवर कुछ परिचय देना है, इसलिए अग्नि तैयार करो ।
तुम उपकारी के भ्राता हो, भाभी पर कुछ उपकार करो ॥"
आज्ञा के होते होते ही उत्पन्न वहाँ पर अनल हुई ।
नवचुम्बन वाली लपटों से, वह सत की पावक प्रबल हुई ॥
तब कहा सती ने—'पति को तज, कल्पना और यदि आई हो ।
इन आँखों ने यदि इन्हें छोड़, राक्षस पर दृष्टि उठाई हो ॥
जागृति तो क्या सपने में भी प्रभु पद में प्रीति न रक्खी हो ।
तो माँ ज्वाले, मेरा यह तन—बस अभी राख की ढेरी हो ॥
यदि सच्ची पतिव्रता हूँ तो, आकर, साक्षी दो, हे माता !
सीता को अपने साथ-साथ लाकर, साक्षी दो, हे माता !"
यह कहकर कूदी पावक में पृथ्वी माता भी दहल उठी ।
उस सत् का परिचय देने को, ज्वाला मैया भी मचल उठी ॥
लपटों की लहरों के भीतर, लावण्यरूप उत्पन्न हुआ ।
फिर धीरे-धीरे वही रूप, सीता समेत सम्पन्न हुआ ॥
अर्पण कर प्रभु से कहा—"त्यागो घृणित विचार ।
निष्कलंकिनी है सिया, करो इसे स्वीकार ॥
भ्रम भेद-विनाशक माया का—जब ज्वालारूप विलीन हुआ ।
तब सीतापति के वाम अङ्ग सीता स्वरूप आसीन हुआ ॥

पृथ्वीतल नभमण्डल सारा, सतवन्ती की जय बोल उठा ।
नीचे सागर, ऊपर समीर, सीता जी की जय बोल उठा ॥

विजय-सहित जब अवध में, पहुँचे रघुकुलचन्द ।
गुरु वशिष्ठ-द्वारा हुआ राजतिलक सानन्द ॥

कहना यह है जिसके सत पर श्रीवजरङ्गी की साक्षी थी ।
जिसके निर्मल आचरणों की ज्वाला जी ने दी साक्षी थी ॥
राजा होकर दशरथ-सुत ने उसको ही बन भिजवाया था ।
माङ्गलिक अवस्था में उसकी यह न्यायीपन दिखलाया था ॥

हुआ योग्यता—पूर्ण यह जिनके द्वारा काम ।
प्रकटे हैं इस अवध में वे रघुवंशी राम ॥
नाम आपका भी सुना हम दोनों ने—'राम' ।
वही राम यदि आप हैं तो लीजिए–प्रणाम ॥"

यह कहकर वीणाएँ अपनी, कर बन्द उठे दोनों गायक ।
इत्यलम् सुनाकर चलने को तैयार हुए दोनों गायक ॥
गीली भीगी अँखियाओं से जब देख रहे थे सभी इन्हें ।
गद्गद् स्वर से तब प्रभु बोले–"रोको ठहराओ अभी इन्हें ॥

साधु बालकों ने कहा राजेश्वर हो मौन ।
आते जाते मेघ को रोक सका है कौन ॥

हम रमते हुए तपस्वी हैं, अत्यधिक नहीं भरमाते हैं ।
जबतक जी चाहा, रहे यहाँ अब जी उचटा, तो जाते हैं ॥
ठहराने और रोकने के आदेश उन्हीं पर फबते हैं—
जो व्यवसायी गायकजन हैं धन पर जो कला बेचते हैं ॥"

रोके से रुकती नहीं ज्यों गङ्गा की धार ।
त्योंही तत्क्षण चल दिए-दोनों राजकुमार ॥
चित्र लिखा-सा रह गया-वह सारा दरबार ।
सुनी सबों ने द्वार पर-फिर ऐसी झनकार—

❋ गाना ❋

—:०:—

"रघुकुल की शक्ति तुम्हीं तो हो, हे सीते शक्ति ! प्रणाम तुम्हें ।
अनुरक्ति, विरक्ति तुम्हीं तो हो, हे सीते शक्ति ! प्रणाम तुम्हें ॥
इस पृथ्वीतल की हरियाली, उस नभमण्डल की उजियाली ।
सबकी अभिव्यक्ति तुम्हीं तो हो, हे सीते शक्ति ! प्रणाम तुम्हें ॥
जो निष्क्रिय और निरंजन हैं, निर्मल, निर्गुण, नारायण हैं ।
उनकी आसक्ति तुम्हीं तो हो, हे सीते शक्ति ! प्रणाम तुम्हें ॥
सत का जिसमें भण्डार सदा, जय का जिसमें आगार सदा ।
वह विस्तृत व्यक्ति तुम्हीं तो हो, हे सीते शक्ति ! प्रणाम तुम्हें ॥
सब भाँति तुम्हीं सुख-करनी हो, 'मोहन' की जीवन-जननी हो ।
मति, गति, रति, भक्ति, तुम्हीं तो हो, हे सीते शक्ति ! प्रणाम तुम्हें ।"

—:०:—

❋ इति ❋

ॐ

• श्रीराम-कथा •

संख्या—२४

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

(लव-कुश-काण्ड)

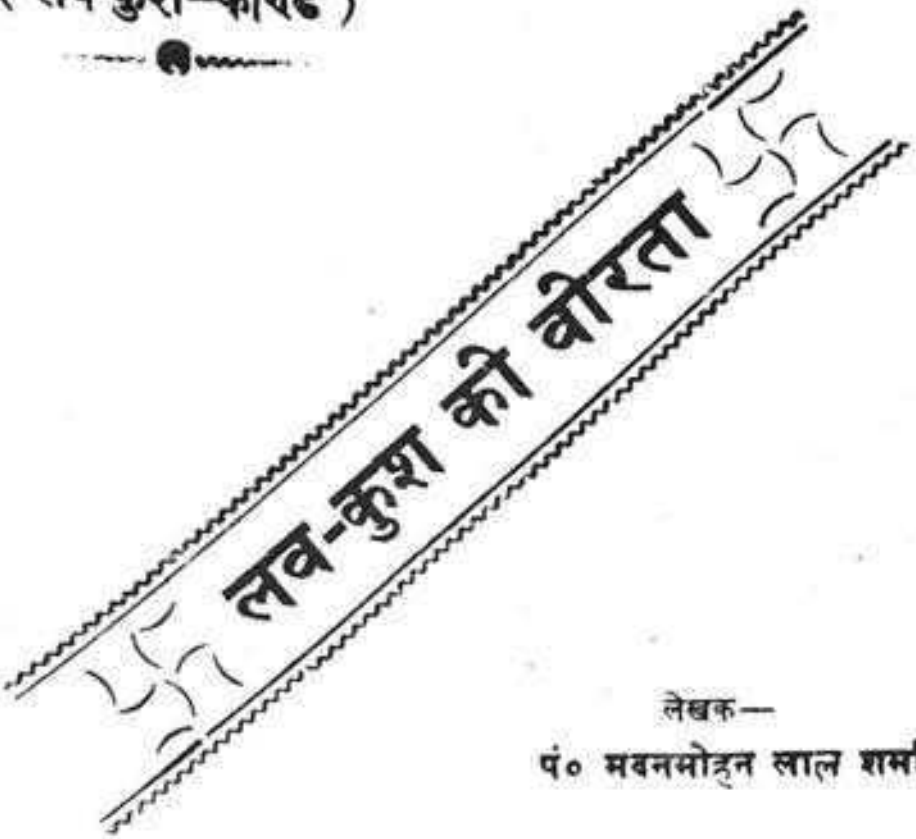

लेखक—
पं० मदनमोहन लाल शर्मा,

सम्पादक
नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न
पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—
राधेश्याम पुस्तकालय बरेली

उन्हत्तरवाँ संस्करण] सन् १९८२ [मूल्य १)

प्रार्थना

धन्वा को कर में लेकर सरकार अब न आना ।
पृथ्वी को लाल करने कर्तार अब न आना ॥
दशभाल के मरण से संसार को मिला क्या ।
नश्वरे शरीर बधने दातार अब न आना ॥
धरणी अवधपुरी की—कहती है आज रोकर ।
उजड़े हुए महल में इस बार अब न आना ॥
आए प्रकाश करने—पर साथ ले गए वह ।
ऐसी झलक दिखाने बेकार अब न आना ॥
आना तो सर्वदा को—रहना यहाँ पै 'मोहन' ।
ऐसे बदल बदल कर—आकार अब न आना ॥

लव-कुश की वीरता

रण-विजयी शत्रुहन ने लिए शत्रु सब जीत ।
गूँज उठा संसार में राम विजय का गीत ॥
इस प्रकार फिर पाप का हटा और भू-भार ।
बाल वीरता का रहा होना उपसंहार ॥

लीलामय की इच्छा ही से यह लीला हुई तपोवन में ।
अर्थात्-यज्ञवाला घोड़ा आपहुँचा-'शान्ति-निकेतन' में ॥
वनदेवी के बलवीरों ने जब घोड़ा सजा हुआ देखा ।
साथ ही शीश पर रघुकुल का बल पौरुष लिखा हुआ देखा ॥
सोचा—"इसका यूँही जाना, वीरत्व लजाने वाला है ।
अपना, गुरु का, बनदेवी का-अपमान कराने वाला है ॥
इस हेतु उचित है निजबल की अब प्रथम परीक्षा लेलें हम ।
खेल ही खेल में रघुकुल को रण का आमन्त्रण देदें हम ॥"
यही सोचकर अश्व को पकड़ लिया तत्काल ।
वीणाधारी करों ने धन्वा लिया सँभाल ॥

उन बली संयमी हृदयों में अब विश्व-विजय का साहस था ।
उत्साही वीर बालकों पर न्योछावर स्वयं वीररस था ॥
वटवृक्ष-क्षीर से सिंचे बाल इस समय व्याल विकराल हुए ।
लालों के लाजभरे लोचन रवि के मण्डल-सम लाल हुए ॥
टंकोर धनुष की होते ही तर्कश के तीर कड़क उट्ठे ।
भड़का वह अश्व रामदल का दलवालों के दिल धड़क उट्ठे ॥
रघुवर की जय के उत्तर में गुरुवर की जय गूँजी क्षण में ।
कोशल के शस्त्रों से पहले बच्चों के तीर चले रण में ॥॥

अवलोका इस विध जभी वन में रण विकराल ।
आगे बढ़कर आगए स्वयं शत्रुहनलाल ॥
देखा-दो मुनि-बालके तेजवान, बलवान ।
तने खड़े तरु तले हैं ताने तीर कमान ॥

सन्निकट यज्ञ का घोड़ा भी बँध रहा पेड़ की जड़ से था ।
रक्षा के हित उस घोड़ा की जोड़ा भी खड़ा अकड़ से था ॥
तब कहा शत्रुहन ने हँसकर—"बचकन्ना, यह क्या करते हो ।
हो अभी तलक अधखिले फूल, क्यों रण-ज्वाला में जलते हो ॥
कोमल कमनीय वत्स होकर वीरों से आँख मिलाते हो ?
तिनकों के तुल्य तीर अपने रघुकुल के लिए दिखाते हो ?
छुप जाओ माँ की गोदी में, रण में क्या काम तुम्हारा है
संग्राम क्षीर की धार नहीं तीखे तीरों की धारा है ॥
जिसने खरदूषण त्रिशिरादिक चौदह सहस्र खल मारे हैं ।
दशकन्धर, बालि-विराध-सदृश बेगिनती वीर सँहारे हैं ॥
जिनको सारे जग के वासी अपना सिरमौर मानते हैं ।
उन रामचन्द्र की सेना से बच्चे संग्राम ठानते हैं ॥"

लव बोले—"विरुदावली और न गाएँ आप ।
राम और रघुवंश का है जग—विदित प्रताप ॥
कुश भैया, वही राम हैं यह, है न्याय न जिसके शासन में ।
जिनकी साध्वी पत्नी सीता मारी फिरती है वन—वन में ॥
जिनके रिपुसूदन भाई ने रघुकुल का मान बढ़ाया है ।
कुबरी दासी के कूबर पर अपना पौरुष दिखलाया है !"
वाक्य-व्यंग ने कर दिया सौ बाणों का काम ।
व्यथित होगए शत्रुहन छेड़ दिया संग्राम ॥
क्षणभर में होने लगी बाणों की बौछार ।
नभ पृथ्वी कम्पित हुए, व्यापी मारामार ॥
अगणित वीरों ने लिया जब दोनों को घेर ।
तब लव ने लव में किया—कुछ ऐसा हथफेर ॥
'राम राम' कहता हुआ—चला रामदल भाग ।
रिपुसूदन इस बात से हुए और भी आग ॥
सोचा—"जग-विजयी सेना का इस भाँति भागना लज्जा है ।
बच्चों से रघुकुल का झुकना—सचमुच कलंक का टीका है ॥
पर बच्चे ? यह बच्चे क्या हैं वन सिंह समान यहाँ के हैं ।
सम्भव है, विधि ने प्रथम बार सिरजे यह बच्चे बाँके हैं ॥"
कहा प्रकट में सैन्य से—'खिला रहे क्यों खेल ?
समय व्यर्थ जा रहा है, अच्छी नहीं झमेल ॥
यद्यपि—गो—द्विज पर, बच्चों पर निज शस्त्र न वीर उठाते हैं ।
कारण—विशेष कर यह तीनों निर्बल ही पाए जाते हैं ॥
पर यहाँ नहीं यह शंका है, यह स्वयं शीश पर चढ़ते हैं ।
चींटे भी हटा दिए जाते—जब तन के ऊपर चढ़ते हैं ॥

इस कारण निज हृदय का संशय कर दो दूर ।
मतवाले बालकों का मद कर डालो चूर ॥

❀ गाना ❀

मन में अपने शंका न लाओ ।
राम के काज को भूल न जाओ ॥
बालकों के भय से भाग रहे—
पीछे न हटो बाँध लो
देखना वीरों, विजय-आन न जाने पाए ।
राम रघुवंश का अभिमान न जाने पाए ॥
कल तलक तुमने विजय प्राप्त की हर बस्ती में ।
आज इस वन में वह सम्मान न जाने पाए ॥
पकड़ो जकड़ो देर न लगाओ आओ ।
राम के काज को भूल न जाओ ॥"

—(०)—

कुश बोले—"कायर कभी हुए नहीं बलवान ।
भग्गड़ क्या दिखलायेंगे-रण में निज सम्मान ॥

वक्ताजी वाक्चतुरता से—युद्धस्थल जीत न पाओगे ।
मुहमाँगी वस्तु न पाओगे बच्चों से मुँह की खाओगे ॥
विजयी सेना का बल-विक्रम रणचण्डी चट कर डालेगी ।
उन मट्ठों में कितना घी है यह रई प्रकट कर डालेगी ॥
वाणों की वर्षा के आगे यह कच्चे घर बह जाएँगे ।
वट वृक्षों जैसे डील डोल पृथ्वी पर पड़े दिखाएँगे ॥
टंकोर-धनुष घन की सुनकर बकवाद धरी रह जाएगी ।
योद्धापन की सूखी मट्टी पानी होकर बह जाएगी ॥

जिस राजा के राज में रहे अधर्म अनीति ।
सौ कल्पों तक भी नहीं होती उसकी जीत ॥
हे अश्व-रक्षको, श्रवण करो हम तुमसे मन की कहते हैं ।
जो भी जितनी भी कहते हैं सब सच्ची सच्ची कहते हैं ॥
घोड़ा वह बल से ले जाए जो रघुवंशी कहलाता है ।
अन्यथा अवधपुर जाने को यह पथ सीधा ही जाता है ॥
कहा शत्रुहन ने—"अरे, वाचालो हो मौन ।
रघुवंशी के सामने रण में ठहरा कौन ॥
गिरिमण्डल चूर चूर होगा, पृथ्वी थर थर कम्पाएगी ।
जिस समय वीर रघुवंशी की विजयी कमान खिंच जाएगी ॥
बाणों की यह वर्षा होगी–तब जग जलमय हो जाएगा ।
तुम दोनों झरनों का बल भी उस जल में लय हो जाएगा ॥
इस कारण शोभा नहीं देता है उत्पात ।
छोटे होकर कह रहे बहुत बड़ी तुम बात ॥"
लव बोले—"छोटे सदा करते हैं उत्पात ।
लेकिन तुम बनकर बड़े, करते छोटी बात ॥"
गरज उठे श्रीशत्रुहन सुनकर यह प्रतिवाद—
"तो अपने अभिमान का अभी चखोगे स्वाद ॥
अबतक इन मनमोहन मुख पर कर बढ़ बढ़कर रह जाता है ।
कुछ दशा निराली थी मेरी शर चढ़ चढ़ कर रह जाता है ॥
लेकिन अब इतनी असभ्यता शत्रुहन नहीं सह सकता है ।
वह चहे चिरौटों के सुनकर कब बाज़ बाज़ रह सकता है ?"
इतना कहकर धनुष को दी अपने टङ्कोर ।
फिर कुछ तेवर तानकर छोड़ा शर उस ओर ॥

आते देखा जिस समय एक भयानक तीर ।
कुश ने मुस्काते हुए दिया मध्य से चीर ॥
वाणों पर वाण छोड़ते थे रिपुसूदन अब अधीरता से ।
कुश उनको निष्फल करते थे पहले की भाँति वीरता से ॥
उस ओर बली लाव लश्कर जब अपने शस्त्र चलाता था ।
तब प्रबल प्रभंजन के समान लव का बल उन्हें उड़ाता था ॥
लव के बल से था उधर विस्मित कटक तमाम ।
इधर थक गए शत्रुहन कुश से कर संग्राम ॥
तब कुश यह कहने लगे-'बहुत कर चुके वार ।
अब बालक का भी तनिक करिए सहन प्रहार ॥"
इस वीर गरज के साथ साथ घन-सा छाया रण आँगन पर ।
बिजली के चौंधे के समान चमका शर एक शत्रुहन पर ॥
उस एक वाण ही से क्षण में, शत्रुहन विकल अत्यन्त हुए ।
वह वाण हृदय लग चरण पड़ा, यह तुरत मूर्छावन्त हुए ॥
सेना में अब मच गयी द्वन्द्व और कुहराम ।
वीर बालकों ने तभी बन्द किया संग्राम ॥
कुछ मुख्य सैनिकों ने रथ पर पौढ़ाया श्री रिपुसूदन को ।
रघुपति की आँखों के आगे पहुँचाया श्रीरिपुसूदन को ॥
कोशल की भरी सभा में जब शत्रुहन मूर्छाहीन हुए ।
रावणासुर के वध करने का मिट गया गर्व अति दीन हुए ॥
राघव बोले—"शत्रुहन कहो छोड़ सन्ताप ?
ग्रास बना है काल का कौन आप ही आप ?"
कहा शत्रुहन ने—"प्रभो हैं दो बाँके बाल ।
काल ग्रास जिनका बने ऐसे वे विकराल ॥

कहने को तो वनवासी हैं, लेकिन रणधीर वला के हैं ।
हैं छोटे छोटे तीर, मगर, वे छोटे तीर वज्र से हैं ॥
मुखमंडल पर वह आभा है रण में प्रकाश हो जाता है ।
वैरी वध करने बढ़ता है तो वैर नाश हो जाता है ॥
लड़ने से पहले ही उनसे चितवन ऐसी लड़ जाती है ।
जीतना हार दिखलाता है, हारना जीत दिखलाती है ॥
शत्रुहन शत्रुहन देता है, यह बात जहान जानना है ।
लेकिन क्या जानें क्या हैं वे, जी जिससे हार मानता है ॥
लवणासुर का वध करवाता, वन-बच्चों से हरवाता है ।
लीलामय की इस लीला से शत्रुहन बड़ा चकराता है ॥"

मन्द-मन्द मुस्कान से सुने सब समाचार ।
तब बोले रघुकुल-तिलक, "छोड़ो सोच विचार ॥

छोटा सौमित्र रणस्थल से यदि मूर्च्छित होकर आएगा—
तो फिर सौमित्र बड़ा जाकर छोटे का मान बढ़ाएगा ॥
लक्ष्मण, लंका में अनगिनती योद्धा रण में संहारे हैं ।
तुमसे बलशाली के आगे यह बच्चे क्या बेचारे हैं ?
पर एक बात यह ध्यान रहे वध कहीं न कर आना भाई ।
ऐसे बलशाली बच्चों को बन्दी ही कर लाना भाई ॥
किष्किन्धापति को अङ्गद को, रक्षा हित ले जाओ लक्ष्मण ।
सभी के सभी काम साधे अब यह भी कर आओ लक्ष्मण ॥"

इस प्रकार कहकर जभी मौन हुए रघुवीर ।
शीश नवा सादर तभी चले लषण रणधीर ॥

आज्ञा की वहाँ प्रतीक्षा थी सेना सजकर तैयार हुई ।
रघुकुल, रघुकुल के राजा की—सैनिकगण जयकार हुई ॥

तेजस्वी सेना में—लक्ष्मण इस प्रकार शोभा पाते हैं।
जैसे पूनों के—रजनीपति उडुगण के मध्य सुहाते हैं॥

चले जभी यह सब सुभट प्रबल एक से एक।
मग में पग-पग पर मिले अशकुन शकुन अनेक॥

जब व्याल सामने आते थे मृगमाला भी आजाती थी।
होती थी छींक जभी सम्मुख श्यामा भी दरस दिखाती थी॥
लड़ते थे आ-आकर बिलाव तो गो-दल भी आजाते थे।
दो घट रीते आजाते थे—दो भरे हुए भी आते थे॥

मिलते थे जब राह में—अशकुन शकुन महान।
लषण किए जा रहे थे सीतापति का ध्यान॥
अङ्गदादि कपिपति सभी थे न मौन मतिमान।
गाते जाते थे सभी—पग-पग पर यह गान—

* गाना *

—:o:—

"राजभक्तो चलो कर्तव्य चुकाना होगा।
आज वह है समय संसार हिलाना होगा॥
प्राण-बलि युद्ध की वेदी पै तुम्हें देना है!
तब अमर होके—परधाम को जाना होगा॥
हर समझदार का जो धर्म हुआ करता है!
धर्मवीरो, उसे इस वक्त, दिखाना होगा॥
शीश को मांगता है आज हमारा राजा!
माल है जिसका उसे देना दिलाना होगा॥
वस्त्र पहना है, उतर जायगा, डर क्या 'मोहन'!
देह के मोह को तज—राम को पाना होगा॥"

—: o :—

जाते थे सेना—सहित इधर राम के भ्रात ।
उधर वीर लव ने कही कुश से ऐसी बात ॥

"हे कुश भैया चैतन्य रहो क्षिति–कण से व्योम छा रहा है ।
सचमुच ही शान्त वनस्थल अब समरस्थल बना जा रहा है ॥
उस ओर देखलो फिर रिपुदल आता है अश्व पकड़ने को ।
माँ बनदेवी को कर प्रणाम–प्रस्तुत हो जाओ लड़ने को ॥

❀ गाना ❀

"जय भक्तिरूप बनदेवी माँ, जय शक्तिरूप बनदेवी माँ ।
जय मुक्तिरूप कल्याणी माँ, जय भुक्तिरूप बनदेवी माँ ॥
बच्चों का मण्डन करती हो, सब आधि-व्याधि तुम हरती हो ।
हो वीर हृदय की तंत्री माँ, जय शक्तिरूप बनदेवी माँ ॥
आशीर्वादों से जननी के—हो जाते—दुर्जन जन नीके ।
है बड़ी इसी से पदवी माँ, जय शक्तिरूप बनदेवी माँ ॥
नयनों के भीतर दृष्टि तुम्हीं, 'मोहन' की सारी सृष्टि तुम्हीं ।
भय हरनी माँ, जय करनी माँ, जय शक्तिरूप बनदेवी माँ ॥"

—: o :—

शक्तिमयी का ध्यान धर विधिवत् भले प्रकार ।
वीर केसरी होगए—अतुल–शक्ति–भण्डार ॥
उसी समय पहले–यहाँ आपहुँचे कपिराज ।
बोले–"हे मुनि बालको, सँभलो रण में आज ॥

अच्छा तो यह है धनुषबाण धरती पर धरो रसोई में ।
सुग्रीव देखकर डरता है आजाय न मोच कलाई में ॥
लङ्का विजयी–दल के आगे मत यह प्रत्यञ्चाएँ फेरो ।
जाओ, ऋषियों की कुटियों में–तुलसी की मालाएँ फेरो ॥"

कुश बोले—"क्या तुम्हीं हो वानरपति सुग्रीव ?
भाग्य हमारे खुल गए देखे बल के सींव ॥
कपिराज बालि से डर तुमने गिरि पर झोपड़ा बनाया था ।
वह हृदय धन्य है जिसने निज—योद्धा भाई मरवाया था ॥
वानराधीश, सचमुच तुमने वीरों में सुयश कमाया है ।
भाई का हनन किया जिसने उसको ही नाथ बनाया है ॥
हे धर्मवीर, हे धर्मरत्न, तुमने स्वधर्म भी पाला है ।
बरसों तक भाभी जिसे कहा उसको ही घर में डाला है ॥"
वाक्य नहीं यह गरल के बुझे हुए थे तीर ।
बींध दिया सुग्रीव का क्षण में वीर शरीर ॥
बोले—"बस, मुख बन्द करो क्यों विष टपकाए जाते हो ?
मिट्टी के टीले होकर गिरि-शिखरों से होड़ लगाते हो ?"
यह कहकर झपट पड़े कपिपति कुश का बल तेज मिटाने को ।
धाता है राहु दिवाकर पर जिस भाँति ग्रास कर जाने को ॥
तब कुश ने मग में ही इनकी सम्पूर्ण वीरता हर डाली ।
बाणों से नयनों के आगे कुछ चकाचौंध—सी कर डाली ॥
लड़ते-लड़ते सुग्रीव थके, रण-बाँका पीछे हटा नहीं ।
वह इस प्रकार मुस्काता था—मानो अबतक कुछ हुआ नहीं ॥
बोले कुश—"कर चुके तुम पूरा निज अभिमान ।
अब बच्चों का बाण भी स्वीकारें श्रीमान् ॥
जैसे ही कुश के धन्वा से छोटा सा शर कुश का पहुँचा ।
सुग्रीव मूर्च्छावन्त हुए माथा घूमा, काँपा पहुँचा ॥
अङ्गद दौड़ा ज्यों ही उसने कपिपति को गिर जाते देखा ।
तब आगे अपने—मन्द मन्द लवजी को मुस्काते देखा ॥

तब ले उछाल अति गरज तरज बोला-"बच्चे क्या, हँसता है ?
ऐसा ही होता आया है, दो लड़ते एक—पछड़ता है ॥
राजा के गिरने का बदला अङ्गद युवराज चुकाएगा ।
हो सावधान हँसने वाले यह सिंह तुझे खाजाएगा ॥"

लव बोले-"क्यों व्यर्थ ही करता थोथी बात ?
कीश न होता सिंह है, भेद हमें सब ज्ञात ॥"

जब से पितुघाती के पग में अपना यह शीस झुकाया है ।
तब से ही क्या इस पृथ्वी पर तू सिंह-सदृश कहलाया है ?
श्रीमान् सिंह जी, घर जाओ, क्यों प्राण गँवाने आए हो ।
रावण की नहीं सभा है यह जो पाँव जमाने आए हो ॥"

कैसे सह सकता भला बालि-तनय यह बैन ?
बाल-भास्कर की तरह अरुण होगए नैन ॥

फिर उसी गरज के साथ-साथ निज गदा चलादी बच्चों पर ।
क्षण में सबने देखा वह थी कुश के बाणों की नोकों पर ॥
इतने में लव ने शर छोड़ा जिससे सर घूमा अङ्गद का ।
पृथ्वी पर गिर तो गए किन्तु साहस वह ही था अङ्गद का ॥

देखी निज साथियों की चहुँ दिशि से जब हार ।
लक्ष्मण तत्क्षण होगए—लड़ने को तैयार ॥

बोले-"सुकुमारो, धन्य तुम्हें, सचमुच अद्भुत बल पाया है ।
किष्किन्धा के गर्वीलों को रण में नीचा दिखलाया है ॥
लेकिन रघुवर को रघुकुल को, ब्रह्मा भी हरा नहीं सकता ।
सागर कितना भी बढ़े-किन्तु सूरज को डुबा नहीं सकता ॥
इसलिए अश्व को लौटादो तुमसे अपना रण ठीक नहीं ।
ईश्वर-भक्तों को माया का आवरण उपकरण ठीक नहीं ॥"

कुश बोले—"यह ठीक है—कहते जो श्रीमान् ।
किन्तु हमारी बात भी सुनलें धरकर ध्यान ॥
ईश्वर भक्तों की तो जग में पथ केवल एक धर्म ही है ।
कारण—ईश्वर के भक्तों की, यदि है तो टेक धर्म ही है ॥
रक्षा को ईश्वर—भक्तों की, धर्मी राजा आवश्यक है ।
रागी का राग जमाने को—उत्तम बाजा आवश्यक है ॥
है विदित हमें—धर्मज्ञ राम जनता के पालनहारे हैं ।
पर, त्रिभुवन-विजयी होकर भी—नारी के द्वारा हारे हैं ॥
सीता साध्वी के कष्टों ने कर दिया नष्ट उनके बल को ।
अब नहीं बड़ाई जग देता लंका—किष्किन्धा—कौशल को ॥
इसलिए जगत का धर्म हुआ—उनसे सिंहासन ले लेना ।
जो व्यक्ति योग्य हो शासन के—उसको ही शासन दे देना ॥
उस दिवस सभा में जब हमने सीता का चरित सुनाया था ।
तब भी उस गाथा को सुनकर रघुकुल कुछ नहीं लजाया था ॥
अतएव देश के नाते अब हमको यह धर्म निभाना है ।
उस मद से भरे महीपति को जग-विजयी नहीं बनाना है ॥"

लक्ष्मण बोले—"है ! तुम्हीं वह गायक गुणवान ?
उतर गए थे ध्यान से सके न हम पहचान ॥"
लव बोले—"अब युद्ध में पहचानोगे और ।
कोरी बातों की जगह—धन्वा को दो ठौर ॥
लड़ने से पहले बतलादो, लक्ष्मण कब लड़ने आयेंगे ?
व बदला बन में सीता को—पहुँचाने का कब पायेंगे ?
अबला के नाक-कान काटे, रघुकुल के धर्म-प्राण बनकर ।
प्रतिकार करेगा कर्म वही लवकुश का धनुषबाण बनकर ॥"

अपना परिचय गुप्त रख—बोले लक्ष्मण बैन ।
"वीर बालको, यह वचन करते हैं बेचैन ॥
लक्ष्मण है अब भी बड़ा व्यथित चित को उसके सन्तोष नहीं ।
फिर वह तो आज्ञाकारी है—उस बेचारे का दोष नहीं ॥
जो नित भाई की इच्छा पर—अपना सर्वस्व लुटाता है ।
वह राजाज्ञा के होने से—सब दोषों से बच जाता है ॥"
कुश बोले—"इस बात में भूल रहे हैं आप ।
धर्म कहाँ ? यह तो हुआ—एक भयङ्कर पाप ॥
जो किसी भाँति भी सत्य मार्ग तजकर कुमार्ग पर जाता है ।
परवश होकर अपनी मति पर अज्ञान-कुठार चलाता है ॥
अन्धा श्रद्धालु वही तो है, वह ही ज्ञानी अज्ञानी है ।
है हंस किन्तु यह बोध नहीं क्या दूध और क्या पानी है ॥
अच्छा यह बात जाने दो—कटने-मरने की बात करो ।
या तो उल्टे घर को जाओ या रण करने की बात करो ॥"
लक्ष्मण बोले—"क्षत्री के प्रति ऐसा कटु वाक्य न अच्छा है ।
क्षत्री तो फिरने के बदले—जूझ ना समर में सीखा है ॥
बच्चो, अब तक जो पर्दा—था अब उसे हटाए देता हूँ ।
मैं ही लक्ष्मण हूँ, कैसा हूँ—यह अभी बताए देता हूँ ॥
जिसने घननाद सँहारा है—उसको तुम भीरु समझते हो ।
सँभलो, इन बाणों से बिंधकर तुम भी निज धाम पहुँचते हो ॥"
अब क्या था खिंच ही गए, धनुषबाण तत्काल ।
क्षणभर में होने लगा युद्ध विकट विकराल ॥
लक्ष्मण जिस समय अग्नि-शर से सर्वत्र अग्नि फैलाते थे ।
कुश तभी बाण से जल बरसा लपटों के लिए बुझाते थे ॥

फिर लक्ष्मण अपना वाण छोड़ जब जल को घी कर देते थे ।
कुश तभी चलाकर निज शायक घी को मिट्टी कर देते थे ॥
धीरे-धीरे बढ़ चला वैज्ञानिक संग्राम ।
घटा जभी छाई इधर, उधर खिल गई घाम !!
बाणों ही बाणों के द्वारा नाना-प्रकार के ज्वर आए ।
वाणों ही वाणों के द्वारा सब नष्ट हुए सब बिलगाए ॥
माया की प्रतिमायें बनकर लड़ती थीं मरती जाती थीं ।
धोखे की सेनाएँ बनकर लड़ती थीं मिटती जाती थीं ॥
जब वैज्ञानिक युद्ध को होने आया अन्त ।
तन्त्र शक्तियाँ होगईं रण में प्रकट तुरन्त ॥
उच्चाटन, मारण वशीकरण, सम्मोहन आदि शस्त्र आए ।
उन मन्त्रों ने उन तन्त्रों ने, कितने ही--कौतुक दिखलाए ॥
लड़ते थे कभी प्रकट होकर फिर कभी गुप्त हो जाते थे ।
नाना प्रकार की लीला मे वीरत्व वीर दिखलाते थे ॥
लक्ष्मण द्वारा व्यथित जब देखे दोनों लाल ।
गुरु ने गुप्त प्रकार मे फेंका माया जाल ॥
सेना का आधा दल अब तो अपने ही को कुश जान गया ।
आधा ऐसे भ्रम में आया लक्ष्मण ही को लव मान गया ॥
कुछ घबराए—अपने ही हाथों से अपनी गर्दन उतार उठे ।
कुछ अपने ही शस्त्रों द्वारा लक्ष्मण जी पर कर वार उठे ॥
लक्ष्मण घबराए जभी देखी ऐसी बात ।
सुमिरा श्रीरघुनाथ को होकर विह्वल गात ॥
चाहा लक्ष्मण ने जभी सीतापति से त्राण !
गुरु ने लौटाया तभी अपना माया वाण ॥

माया की माया हटते ही सारी सेना को ज्ञान हुआ ।
उर्मिलानाथ को भी अपनी बीती बातों का ध्यान हुआ ॥
पर सेना ऐसी घबराई जम सकी नहीं समरस्थल में ।
भागी कौशल की ओर तुरत जम सकी नहीं समरस्थल में ॥

लक्ष्मण ने देखा जभी सेना का यह हाल ।
तेवर तिर्छे होगए नेत्र होगए लाल ॥

जानकी, जानकी--जीवन का फिर ध्यान किया श्रीलक्ष्मण ने ।
शारङ्ग शक्ति भरकर खींचा शर छोड़ दिया श्रीलक्ष्मण ने ॥
वह तीर वज्र सा जभी लगा कुश गिरे मूर्च्छा खाकर तब ।
सत्वर सामने समर करने डट गया वीर लव आकर तब ॥

आते ही लव ने किया शर का प्रबल प्रहार ।
सारी सेना में मचा भीषण हाहाकार ॥
लक्ष्मण ने देखा जभी यह प्रहार उद्दण्ड ।
अपने शर से कर दिए लव--शर के दो खण्ड ॥
कुश ने जागे देखा हुए लव--शर के दो खण्ड ।
पूर्ण क्रोध में प्रलय सा छोड़ा बाण प्रचण्ड ॥
लगा हृदय में लषण के वह शायक बलवन्त ।
आई मीठी--नींद सी, मूर्च्छित हुए तुरन्त ॥
सेना में अब मच गया एक प्रबल कुहराम ।
बन्द बालकों ने किया तभी महासंग्राम ॥
कुछ लक्ष्मण इत्यादि की करने लगे सँभाल ।
कुछ सैनिक पहुँचे अवध और सुनाया हाल ॥
भरा हुआ था जिस समय कौशल का दर्बार ।
तभी चुटीले वीरगण करने लगे पुकार ॥

* गाना *

—:o:—

"अवधनाथ जगन्नाथ सीतानाथ, त्राहिमाम् ।
त्राहिमाम् त्राहिमाम् गाहिमाम् त्राहिमाम् ॥
महान दुख है--रघुवंश हिला जाता है ।
मुकुट अवध का, महाराज, डिगा जाता है ॥
बड़ा अन्धेर है जुगनू की चमक के आगे ।
प्रकाश रखते हुए, सूर्य छिपा जाता है ॥
सब पड़े अचेत वहाँ, चेत करें दयाधाम ।
रक्षमाम् रक्षमाम पाहिमाम् पाहिमाम् ॥

— : o : —

सुना सैनिकों से जभी रण का दुख वृत्तान्त ।
खेद प्रकट कर, भरत से--बोले सीताकान्त ॥
"भैया, देखो तो सही है, कैसा अन्धेर ।
दो बच्चों ने कर दिया रण में यह हथफेर ॥

धिक्कार राजसी बाने पर जो रण इस भाँति मचाता है ।
मुझको तो वह क्लेशोंवाला बन का जीवन ही भाता है ॥
निश्चय है यह राजा होकर रण में दशकन्धर हारा था ।
तपसी—जीवन के बल ही से हमने उसको सँहारा था ॥
देखा न प्रकट, जिस योद्धा ने घननाद सरीखा मारा है ।
वह ही बनवासी बच्चों--से चेतनाहीन बेचारा है ॥
हे भरत, बताओ तुम्हीं आज—कैसे यह पूर्ण समस्या हो ?
जो जग की रक्षा करता है उसकी अब क्योंकर, रक्षा हो ?
लक्ष्मण जब वहाँ मूर्च्छित हो--तब तो मेरी तैयारी है ।
कर्त्तव्य कान में कहता है—अवधेश्वर, तेरी बारी है ॥"

यह सुनकर बोले भरत—"ठहरें दयानिधान ।
जब तक जीवित दास है ऐसा करें न ध्यान ॥
मेरी उत्कट उत्कण्ठा है—जीवन को धन्य बनाऊँ मैं ।
अपने ठाकुर की प्रतिमा पर अपना सर्वस्व चढ़ाऊँ मैं ॥
शत्रुहन-लषण को जिस प्रकार रण-आज्ञा देते हो भैया ।
वैसे ही काम भरत से भी किसलिए न लेते हो भैया ?"
प्रभु बोले—"मेरे लिए हैं सब भ्रात समान ।
किन्तु तुम्हारे साथ है कुछ सम्बन्ध महान ॥
लक्ष्मण सा योद्धा भाई जब मूर्च्छित रण में होजाएगा ।
तो मालाएँ जपने वाला किस भाँति वहाँ जप पाएगा ?
बस इन्हीं विचारों से तुमको अब तक रोक रहा भैया ।
बदले में ज्वाला के भीतर अपने को झोंक रहा भैया ॥"
भरत उसी क्षण कह उठे-"अभी ठहरिए नाथ ।
आज देख तो लीजिए माला के भी हाथ ॥
कुछ वर्षों के तपसी बालक ऐसा अन्धेर मचायेंगे—
तो चौदह वर्षों वाले क्या कर्तव कुछ भी न दिखायेंगे ?
वर्षों तक तार तपा है जो वह अब कमान बन जाएगा ।
माला का एक एक दाना-शायक महान बन जाएगा ॥"
प्रभु बोले—"यह बात है, तो तैयार हो जाउ ।
जामवन्त हनुमन्त को साथ साथ ले जाउ ॥"
शीश नवाकर जब भरत होने गए तैयार ।
तब बोले हनुमान् से इस प्रकार सरकार—
"मेरे हित जिसने राज्य छोड़ बनबास ग्रहण कर डाला था ।
मेरा अनन्य आराधन कर सर्वस अर्पण कर डाला था ॥

वह ही अब न्योछावर करता प्राणो को मेरे ऊपर है।
रक्षा का उसकी भार आज बजरङ्ग तेरे ऊपर है॥"
पवनतनय से कह चुके जब यों मन के बैन।
जामवन्त से तब लगे—कहने करुणाऐन॥
"फन्दे में नाग पाश के जब सारा बानरदल आया था।
तब मेघनाद को कर परास्त तुमने निज बल दिखलाया था॥
उस बल का उस कौशल का फिर जग को परिचय देते आना।
बन के तेजस्वी बच्चों को बन्दी करके लेते आना॥"
इधर राम आज्ञा हुई दासो को स्वीकार।
उधर भरत भी आगए—होकर शीघ्र तैयार।
आते ही बोले भरत—शीश नवा साह्लाद—
"निश्चय होगा विश्व में कौशल का जयनाद॥
जिसके हैं जगपति रखवाले उस जन को भला कहाँ भय हैं?
त्रिभुवन में चौदह लोकों में नव खण्डों में उसकी जय है॥
क्षत्री का हृदय उमँगता है रण में कुछ कर दिखलाने को।
हे नाथ, आज्ञा दो तुरन्त 'रघुकुल की जय' में जाने को॥
भरत चखाएगा उन्हें रण का पूरा स्वाद।
"यदि सीतापति ने दिया-हार्दिक आशीर्वाद॥"
हो प्रसन्न प्रभु ने कहा-"है यदि ऐसी बात।
हार्दिक आशीर्वाद है मेरा यह हीं भ्रात॥
विश्व तुम्हारे चरित्र का गाएगा नित गीत।
रघुवंशी, रघुवंश की होगी अन्तिम जीत॥"
इतना सुनते ही किया दासों ने जय—नाद।
चले साथियों के सहित भरतलाल साह्लाद॥

माण्डवीनाथ का रण-प्रयाण जग को भरमाये लेता है।
वह शान्त ढङ्ग वह श्याम अङ्ग रघुवर का धोखा देता है॥
वल्कल के प्रेमी योगी ने पहना है आज कवच खुलकर।
जारहा शान्तरस शान्ति सहित इस समय वीररस पै तुलकर॥

अस्तु, शीघ्रता से वहाँ पहुँचे यह बलवान।
जहाँ बालके खड़े थे—खींचे हुए कमान॥

देखा—कितने ही योद्धागण पृथ्वी पर शयन कर रहे हैं।
भीतर तो सबमें जीवन है, बाहर से सभी मर रहे हैं॥
हत को देखा तो आहत था, आहत हत सदृश दीखता था।
कितने हत थे कितने आहत यह जोड़ नहीं लग सकता था॥
वह शान्त विपिन की तपोभूमि सब ओर लाल ही दमकी है।
उस लाली में हीरों जैसी शस्त्रों की ढेरी चमकी है॥
मानो विपिनस्थलि ने ओढ़ा—जब लाल दुपट्टा तारा का।
तब युद्धपती ने पहनाया, यह गहना हीरक-हारों का॥
दूसरी ओर यह भी देखा—दो बच्चे धनुष चढ़ाए हैं।
उस अश्वमेध के घोड़े पर, अपना अधिकार जमाए हैं॥
कटि पर कौपीन सुहाती है, सिर पर जटाओं का जूटा है।
बल से सब वीर घटाएँ हैं-छवि से मारा जग लूटा है॥

भरत रूप-नद में गए—रिपु का भाव विसार।
प्रेममग्न होकर-कहा—"धन्य युगल सुकुमार॥

कौशलपति ने दण्डक-बन में ईश्वर की शक्ति दिखाई थी।
चौदह सहस्र निशचर वध कर 'अवतारी कला' बताई थी॥
तुम भी इस रण में कहने को-वीरों का वंश हो रहे हो।
पर ज्ञान-दृष्टि से दोनों ही 'ईश्वर के अंश' हो रहे हो॥

हृदयस्थल में भरत के होता यह सन्देह ।
'प्रकृति तुम्हारी माँ बनी स्वयं धार कर देह' ॥
लव बोले—"कुश, घर चलो रण में रही न जान ।
वैरी तो करने लगा—विरुदावली बखान ॥
हम समझे थे कैकेयी-सुत योगी है और सुभट भी है ।
यह केवल भ्रम ही था भाई, वास्तव में भरत भगत ही है ॥
अपने भ्राता की, राजा की, क्या सुघड़ वीरता गाई है ।
बलिहारी है चतुराई की, निर्बलता सभी छुपाई है ॥
हम भी यह बात जानते हैं, खर—आदि उन्होंने मारे थे ।
पर तीन पैर पीछे हटकर चौदह सहस्र सहारे थे ॥
हे भरत, आप ही न्यायी बन—कहदें यह न्याय कहाता है ?
रण में जो हटता तीन पैर क्या वह योद्धा कहलाता है ?
हम तो वास्तविक न कुछ भी हैं सचमुच हैं दो दिन के लड़के ।
पर गुरुबल से यह कहते हैं, तुम जीत नहीं सकते लड़के ॥
बल है हम में बनदेवी का ब्रह्माण्ड हिला सकते हैं हम ।
विन्ध्याचल और हिमालय को रेणुका बना सकते हैं हम ॥
यदि बल हो, उत्साह हो, तो बस आगे आउ ।
यह न हो सके तो अभी सीधे घर को जाउ ॥"
सुने भरत ने जिस समय लव के तीखे बैन ।
लगी चोट सी हृदय में लाल होगए नैन ॥
बोले—"बच्चों, व्यर्थ क्यों करते वार्तालाप !
रघुकुल का संसार में है विख्यात प्रताप ॥
तुमने क्या यही समझ रक्खा है छुई—मुई इन बाणों में ।
रखते हैं हम भी प्रबल शक्ति कुछ छुपी हुई इन बाणों में ॥"

इतना कहकर श्रीभरतलाल वाणों पर वाण चला उठ्ठे ।
तब तीर इधर से अपने वे रघुकुल प्राण चला उट्ठे ।
अब नहीं समझ कुछ सके भरत किसका शर किधर जा रहा है ।
अपना ही शायक टकराकर अपनी ही ओर आ रहा है ॥
एक ही वाण के भीतर से–जब लाखों वाण निकलते थे ।
तब दीख न पड़ता था दल में–कितनों के प्राण निकलते थे ॥
आश्चर्य एक था–लव के शर–जब घाव भरत के करते थे ।
तब क्या जाने–क्या माया थी, वे घाव तुरत ही भरते थे ॥

निकले किसी प्रकार जब नहीं भरत के प्राण ।
तब लव ने कुछ मन्त्र पढ़ छोड़ा भीषण वाण ॥
हनुमत् ने आते जभी देखा ऐसा वाण ।
हटा भरत को मार्ग से तुरत बचाए प्राण ॥

बस इसी तरह से तीन बार–जब जब लव ने यह वार किए ।
बजरङ्गी ने भी इसी तरह, हर बार–बार बेकार किए ॥
कुश ने देखा—कोई वानर लड़ने में बाधा देता है ।
भैया के महा–शायकों से–वह बचा भरत को लेता है ॥
बोले—"बलिहारी है वानर–रण में बाँका योद्धा है तू ।
वीरों की प्रथम परीक्षा में उत्तीर्ण महा योद्धा है तू ॥
यदि इच्छा शस्त्र शास्त्र की हो तो चतुर छात्र आगे आजा ।
आचार्य परीक्षा की शिक्षा हम तपस्वियों से लेता जा ॥"

इतना कहकर धनुष पर जभी चढ़ाया तीर—
तभी सोच कुछ हृदय में ठहर गए कुश वीर ॥

बोले–शस्त्रों से रण करना वीरत्व न समझा जाता है ।
रण से वैरी पर जय पाना शारीरिक बल न कहाता है ॥

फिर धनुष बाण यदि ले हमने निःशस्त्रों से संग्राम किया ।
क्या किया ! वीर-रण नहीं किया, कायर पुरुषों का काम किया ॥
इसलिए मल्ल-रण करने को अब अपना हृदय पुकार रहा ।
ओ कीश, तुझे कुश कुश्ती को इस दङ्गल में ललकार रहा ॥"

अब तो श्रीबजरङ्ग को लड़ना था अनिवार्य ।
आगे बढ़कर भिड़ गए वे रण के आचार्य ॥
क्षण में दोनों में छिड़ा मल्लयुद्ध घमसान ।
दाँव पेंच ऐसे पड़े होते नहीं बखान ॥
वही हुआ परिणाम जो विधि को था स्वीकार ।
'रावण से हारे नहीं, यहाँ गये कपि हार' ॥
बाँध लिया बजरंग को कुश ने जब तत्काल ।
जग बोला—'विजयी हुआ बनदेवी का लाल' ॥

लव ने देखा जब—वीर कीश हाथों में कुश के आया है ।
चहुँ ओर पूँछ से अपनी ही अपना शरीर बँधवाया है ॥
तब कह उट्ठे मुस्काकर यूँ—"क्या सुघड़ खिलौना पाया है !
मृग-पालन के बदले तुमको अब बानर-पालन भाया है ॥
अच्छा थोड़ा आराम करो, मैं रिपुदल अभी हटाता हूँ ।
तुम कपि को आश्रम लेजाओ मैं घोड़ा लेकर आता हूँ ॥"

खींची सेना पर—इधर—लव ने धनु की डोर ।
कुश लेकर हनुमान्‌को चले कुटी की ओर ॥
कपि केवल थे बँधे ही और न थी कुछ हानि ।
क्या जानें क्या बात थी दुख था और न ग्लानि ॥
पूजा-घर के सामने था प्रिय पर्णनिकेत ।
दिया बाँध कुश ने वहीं कपि को प्रेम समेत ॥

तब पहुँचे कुश कुटी में परम हर्ष के साथ ।
माता को, गुरुदेव को—सादर नाया माथ ॥
बोले—"गुरु-चरणों के बल से अबतक जय हमने पाई है ।
जब-जब सेना चढ़कर आई—तब-तब ही मार भगाई है ॥
पर एक बड़ा अचरज सा है—जो नहीं समझ में आता है ।
मारण प्रयोग परिवर्तित हो—सम्मोहन बनता जाता है ॥
जिसको भी वहाँ देखते हैं—वह पड़ा मृतक-सा मूर्च्छित है ।
चेतना किसी को नहीं किन्तु प्रत्येक वहाँ पर जीवित है ॥
मूर्च्छा भी कुछ विचित्र-सी है, अबतक देखी या सुनी नहीं ।
कितने ही दिन होगए किन्तु है आँख किसी की खुली नहीं ॥
इस समय वहाँ लव भैया ने सबको नीचा दिखलाया है ।
मेरे द्वारा श्रीचरणों में—कपि एक पकड़ भिजवाया है ॥"
यह सुनकर गुरु ने कहा—"देर न अधिक लगाउ ।
आदर शिष्टाचार से यहाँ उसे ले आउ ॥"
'जो आज्ञा'—कह कुश तभी चले द्वार की ओर ।
सीता ने गुरु से कहा हो कुछ प्रेम-विभोर ॥
ऋषिवर्य, नित्य मैं सुनती हूँ, छिड़ रहा समर योद्धागण में ।
यह भी आते हैं समाचार—बच्चे यह पाते हैं रण में ॥
पर यह अबतक है विदित नहीं—किसने कठोरता ठानी है ।
जो जूझ रहा है बच्चों से वह कौन नृपति बलवानी है ॥
जब विनय आपसे करती हूँ—तो आप मौन हो जाते हैं ।
'लेता हूँ बाल परीक्षा में'—बस इतना ही बतलाते हैं ॥
अतएव आज इस पुत्री पर सब भेद अवश्य प्रकट करिए ।
क्या रण है! क्यों है! किससे है यह सभी रहस्य प्रकट करिए ॥"

गुरु बोले—"धीरज धरो, सुलझ रहा है जाल ।
आज प्रकट हो जायगा, छुपा हुआ सब हाल ॥"
इतना ही कह सके थे ऋषिवर नीति निधान ।
आ पहुँचे कुश के सहित उसी समय हनुमान ॥
बस भक्तराज ने आते ही—बनदेवी को पहचान लिया ।
ऋषि कुटिया में भी बेटे ने निज जननी को पहचान लिया ॥
माँ-बेटे का वह प्रेम-मिलन लेखनी नहीं लिख सकती है ।
शारदा वहाँ पर गूँगी है—टकटकी बाँधकर तकती है ॥"
'माँ-माँ'-कहता हुआ जब गिरा चरण में लाल ।
'मेरे हनुमत' कह सिया चौंक उठी तत्काल ॥
अचरज में हो रहे थे कुश-समेत ऋषिवृन्द ।
प्रकट किया गुरु ने तभी सब रहस्य सानन्द ॥
"रक्खा था जिसको छुपा, रख बनदेवी नाम ।
वही राम की प्रिया हैं-यह सीता गुणधाम ॥"
बोल उठा कुश—"हैं ! वही है यह अपनी मात—
तो क्या सुत अवधेश के हैं हम दोनों भ्रात ?"
गुरु बोले—"हाँ ऐसा ही है तुम ही हो सुत अवधेश्वर के ।
यह ही सीता हैं-जिनके यश गायेंगे कवि पृथ्वी भर के ॥
मेरे उस महाकाव्य में भी, देदीप्यमान यह ही तो हैं ।
तुम गाते हो जो विमल-चरित्र उसमें प्रधान यह ही तो हैं ॥
इनके ही कारण इस बन में-मैंने यह रण रचवाया है ।
मैंने ही योगशक्ति-द्वारा सबको इस जगह बुलाया है ॥
विस्तार-सहित फिर सुन लेना अब चलो समर के सम्मुख तुम ।
'सीता-चरित्र' का शेष भाग गादो रघुवर के सम्मुख तुम ॥

धन्वा को कुटिया में रख दो अब वीणा-बाण चलाना है ।
एक ही बार में कौशल पर पूरा अधिकार जमाना है ॥"
यह कहकर कपि के सहित कुश को लेकर साथ ।
चले रणस्थल को तभी-मोद सहित मुनिनाथ ॥
उधर युद्ध में भरत ने किए उपाय अनन्त ।
जीत नहीं लव को सके हुए मूर्च्छावन्त ॥
जामवन्त ने भरत का देखा जब यह हाल ।
दौड़े लव पर वेग से भिड़ने को तत्काल ॥
एक बाण ही से दिया-लव ने उड़ा तुरन्त ।
गिरे अयोध्या सभा में हो मूर्च्छित अत्यन्त ॥
चेत—हुआ तो सामने-देखे सीताकान्त ।
अति लज्जित होकर कहा, रण का सब वृत्तान्त ॥
विवश होगए नाथ तब-स्वयं किया प्रस्थान ।
फिर देखे संसार ने-रण में शान्ति निधान ॥
प्रभु ने पहले लव-निकट, गए विभीषण भक्त ।
कहा-"व्यर्थ तुम किसलिए बहा रहे हो रक्त ?
लका का नाथ विभीषण—यह देता है नेक सलाह तुम्हें ।
जाओ तुम पढ़ो पुस्तकों को रण का क्यों है उत्साह तुम्हें ?
इस यज्ञ-श्रुवा वाले कर में, यह धनुष न शोभा पाता है ।
ऋषियों को और तपसियों को, कब क्षत्रिय-कर्म सुहाता है ?"
"बलिहारी" लव ने कहा—धर्मवीर महाराज ।
यह सम्मति देते समय तुम्हें न आई लाज ॥
तुम जिसके हो आधीन आज उसने यह पथ दिखलाया है ।
तापसपन में रावण जैसे ब्राह्मण पर शस्त्र उठाया है ॥

भाई के घातक ! सागर की हर लहर रो रही अबतक है ।
तेरे ही कारण तो-लङ्का परतन्त्र हो रही अबतक है ॥
ओ धर्मधुरीण, सोच तो तू-क्या किया है तूने जीवन में ।
"मन्दोदरि अपनी रानी को यह दिखलाया है शासन में ?"

वचन-बाण से यूँ बिंधे जभी विभीषणराय ।
दौड़े अपनी गदा ले समझ सब अभिप्राय ॥
किन्तु बीच ही में दिया लव ने रोक तुरन्त ।
एक बाण में ही किया उनको मूर्च्छावन्त ॥
उसी समय आगे—बढ़े रघुराई रघुनाथ ।
लव भैया ने तब कहा-कर कुछ नीचा माथ ॥

"हे अवधेश्वर, हे राजेश्वर, कष्टों की क्षमा चाहता हूँ ।
थोड़े में सच्चा समाधान--शंका का किया चाहता हूँ ॥
रघुकुल के पति होकर तुमने धोखे से बालि संहारा क्यों ?
सब भेद विभीषण से लेकर रावण सा ब्राह्मण मारा क्यों ?
श्री शूर्पणखा तो नारि जाति फिर उसकी नाक कटाई क्यों ?
सुग्रीव विभीषण के कारण—पीछे से आँख चुराई क्यों ?
न्यायी राजा हो करके क्यों-ऐसा अन्याय किया तुमने ।
सीता की अग्नि-परीक्षा ली-फिर भी बनवास दिया तुमने ?"

सचमुच रघुवर रो पड़े, बोल उठे-"बलिहार !
बच्चे, तेरी बुद्धि पर-न्योछावर संसार ॥

उत्तर दूँ मैं ? क्या उत्तर दूँ ? बस मेरा कहना यह ही है ।
गुण और दोष होते जिसमें, वह ही तो चरित मानवी है ॥
मैंने मानव-लीला की है--मानव का रूप दिखाया है ।
अन्यथा धाम जो है मेरा-उसमें न प्रपञ्च न माया है ॥"

लव बोले—"वेदान्त से जब कर रहे बचाउ—
तो माया यह कह रही धनुष बाण ले आउ ॥"
यह कह बालक ने जभी ताना तीर कमान ।
रघुपति ने भी धनुष पर लिया बाण सन्धान ॥
तभी सुनी कुछ दूर से दोनों ने यह टेर ।
"सावधान ! करना नहीं यह अनीति अन्धेर ॥"
देखा कुश हनुमान को—साथ लिए साह्लाद ।
वाल्मीकि आ रहे थे—करते ऐसा नाद ॥
आते ही आते गुरु बोले—"हे लव, संग्राम बन्द करदो ।
कुश की वीणा अब बाजेगी तुम अपना धनुषबाण रखदो ॥"
यह कहकर तुरत कमण्डल से कुछ जल छिड़का हरहर करके ।
सारा रामादल जी उट्ठा "जय रघुनायक रघुवर" कहके ॥
तब कुश की ओर देख मुनिवर बोले—"सन्देह हरो बेटा !
वीणा पर रहा सदा भी अब 'सीता-चरित्र' कहदो बेटा ॥"
आज्ञा ही की देर थी, तुरत मिल गया तार ।
वैर-भूमि पर प्रीति की कुश ने की गुञ्जार ॥

❀ गाना ❀

—:०:—

"श्रीराम कथा की ओर जगत् जब धाया—
तो सार वहां 'सीता-चरित्र' ही पाया ॥
लंकेश्वर को श्रीअवधेश्वर ने मारा ।
भूतल पर से यो भारी भार उतारा ॥
सचमुच नभ पर चमका तब धर्म सितारा !
जब रघुकुल पति ने राजमुकुट सिर धारा ॥
उस शासन ने जब जग को स्वर्ग बनाया—
तो सार वहां—'सीता-चरित्र' ही पाया ॥१॥

जिस समय प्रजा में बुरी भावना जागी ।
मांगलिक समय में पति ने पत्नी त्यागी ।।
उस समय हृदय में भवक रही थी आगी !
कर्तव्य धर्म से नहीं भामिनी भागी ।।
मुनि वाल्मीकि ने धीरज जभी बंधाया—
तो सार वहाँ—'सीता-चरित्र' ही पाया ।।२।।

पति-विरह व्यथा में महादुखी थीं सीता ।
रटती रहती थीं 'राम-राम' की गीता ।।
गुरु कृपा हुई तब जग ने देखा जीता ।
अन्यथा देह का ढाँचा मिलता रीता ।।
गुरु ने सीता का सीता नाम छुपाया ।
तो सार वहाँ—'सीता-चरित्र' ही पाया ।।३।।

वनदेवी ने शुभ समय पुत्र दो जाए ।
गुरुवर ने उनके 'लव—कुश' नाम सुनाए ।।
फिर अश्वमेध पर अवध उन्हीं को लाए ।
साम्राज्य—सभा में वीणा ले गुण गाए ।।
उस समय सभा में महामोद जब छाया ।
तो सार वहाँ—'सीता-चरित्र' ही पाया ।।४।।

कुछ दिनों बाद जब अश्व यज्ञ का धाया ।
गुरु—माया ने आश्रम की ओर बुलाया ।।
बच्चों द्वारा जब सब का मान घटाया ।
तो आज इस तरह पट यह प्रकट उठाया ।।
'मोहन' प्रभु की जय सिया महा है माया ।
तो सार वहाँ—'सीता-चरित्र' ही पाया ।।५।।

—: o :—

—ॐ इति ॐ—

• श्रीराम-कथा •

संख्या—२५

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है

(लव-कुश-काण्ड)

लेखक—
पं० मदनमोहन लाल शर्मा,

सम्पादक
नेपाल की श्री ३ सरकार से "कथावाचस्पति" की पदवीप्राप्त—
कीर्तनकलानिधि, काव्यभूषण, हरिकथाविशारद, कविरत्न
पं० राधेश्याम कथावाचक

प्रकाशक—

उन्हत्तरवाँ संस्करण] सन् १९८२ [मूल्य १)

प्रार्थना

सुना है तारे हैं तुमने लाखों—
हमें भी तारो तो हम भी जानें।
उबारा गजराज ग्राह से है
हमें उबारो तो हम भी जानें॥
हरा अहिल्या का शाप तुमने।
मिटाया शबरी का ताप तुमने।
हमारे भी शाप ताप भगवन्—
अगर निवारो तो हम भी जानें॥
निशाचरों को संहार तुमने—
उतारा पृथ्वी का भार तुमने—
हमारे सिर पर है बोझ भारी—
उसे उतारो तो हम भी जानें॥

सतवन्ती सीता की विजय

जैसे ही कुश से सुना–वैदेही वृत्तान्त ।
वीरभूमि पर सुधा-सम–बरस उठा रस शान्त ॥
क्षमा माँगने को बढ़े जब दोनों रणधीर ।
हृदय लगाकर—प्रेम से, भेंटे तब रघुवीर ॥
पुत्रों का निज पिता से यह प्रिय मिलन निहार ।
सुरपुर से बरसे सुमन, गूँजी जय जयकार ॥
लक्ष्मण ने निरखे जभी–दोनों रूप अनूप ।
कहा–"अमङ्गल रण हुआ आज माङ्गलिक रूप ॥
आशिष देने के लिए इन्हें—प्रत्येक हृदय उमड़ाता है ।
अभिवादन करने को इनका–रघुकुल का दल उमँगाता है ॥
यह हार नहीं है, जीत हुई, अपयश के भीतर यश पाकर ।
कौशल ने निज पर जय पाई, परिपूर्ण पराजय में आकर ॥
अब इसका निर्णय कौन करे किसने यह युद्धस्थल जीता ?
कौशल ने यह दोनों जीते, या बदले में कौशल जीता ?
या जीत-हार के बदले में परिणाम हुआ है मनचीता ।
सीता ने राघव को पाया, राघव ने पाई है सीता ॥

हे राम रमापति, मायापति, अब यह लीला संवरण करो ।
साध्वी सतवन्ती सीता को. सबके सम्मुख फिर ग्रहण करो ॥"
रघुपति बोले–"सिया से पृथक् न होगा राम ।
किन्तु करेगा नहीं वह प्रजा-विरोधी काम ॥
संसार सहस्रों रूप रचे, पर मुझको डिगा नहीं सकता ।
राघव को–प्रजा-विरोधी नृप–ब्रह्मा भी बना नहीं सकता ॥
मेरी इसमें सम्मति ही क्या सारी सम्मति जनता की है ।
बनवास वही दे सकती है. रनिवास वही दे सकती है ॥"
वाल्मीकि जी कह उठे–"धन्य तुम्हें रघुराज ।
प्रबल पराकाष्ठा हुई, प्रजा–प्रेम की आज ॥
मेरी तो सम्मति यही, करो न ऐसा काम ।
जिसके द्वारा विश्व में—रघुकुल हो बदनाम ॥
जनता के मत से हो विरुद्ध राजा का चलना ठीक नहीं ।
जब प्रजा विरोधी है तब तो सीता का रखना ठीक नहीं ॥
उस अज्ञ प्रजा ही का पहले—अज्ञान मिटाया जाएगा ।
जिस दर्पण में धुँधलापन है, उसको चमकाया जाएगा ॥
इतने ही में–सिंहवत् गर्जे पवनकुमार—
"निश्चय श्रीमुनिराज का है अति उच्चविचार ॥
मैं भी दृढ़ता से कहता हूँ यह झूठा दोष मिटाऊँगा ।
महलों में अपनी माता को—अपने बल से पहुँचाऊँगा ॥
कानों के द्वारा सुनी नहीं–आँखों देखी बतलाऊँगा ।
उस बहके हुए अवधपुर को–साध्वी का ज्ञान कराऊँगा ॥
फिर भी विश्वास न होगा तो–जनता से रण ठन जायगा ।
यह सहनशक्ति वाला हनुमत् साक्षात् रुद्र बन जायगा ॥

पृथ्वी आकाश विलोकेंगे–उस समय धर्म इस सेवक का ।
चतुरानन, शंकर देखेंगे–उस समय कर्म इस सेवक का ॥
तापसी प्रकृति का दुनिया से–अस्तित्व मिटाया जाएगा ।
सद्गुण की सामग्री से फिर–संसार बसाया जाएगा ॥
यह जीवन सफल तभी होगा–यह आँखें सफल तभी होंगी–
जब सीतापति की वामाङ्गी कौशल की साम्राज्ञी होंगी ॥"

वचनों से बजरङ्ग के, दहल उठा संसार ।
हुआ विरोधी जगत् में सहकारिता प्रसार ॥

प्रण बाल ब्रह्मचारी का सुन, कपियों के हृदय फड़क उट्ठे ।
अनुमोदन को बच्चों के भी तरकश में तीर खड़क उट्ठे ॥
इतने पर भी मायापति की वह दिव्य मूर्ति मुस्काती थी ।
घटना की घटा बरसती थी, सूरज पर बूँद न आती थी ॥

अस्तु महामुनि के लिए था जो कुछ स्वीकार—
बहुमत द्वारा होगया निर्णय वही विचार ॥
"कौशल आएँ मैथिली, लक्ष्मणजी के साथ ।
इधर चलें पुत्रों सहित अवध अभी मुनिनाथ ॥"
आज्ञापालन को बढ़ मुदित सुमित्रालाल ।
चले कुटी की ओर को रथ लेकर तत्काल ॥
मुनिवर सुतवर भ्रातृवर सैनिकगण के साथ ।
चले इधर कौशलपुरी कौशल के नरनाथ ॥
भेद भाव तज मार्ग में केहरि और कुरङ्ग—
लव-कुश को जाता निरख हुए–उन्हीं के सङ्ग ॥

प्यारों के प्यारे मित्रों ने—अपनों का हाथ नहीं छोड़ा ।
बन के इन बन्धु बान्धवों ने—साथी का साथ नहीं छोड़ा ॥

लव-कुश का दल जब साथ चला, तब ऐसा दृश्य सुहाया था ।
मानों सुर-सहित प्रेमदल भी शिव के विवाह में जाता था ॥
वृक्षों से पक्षी कहते थे—भैया जी लिए जारहे हैं ।
बिन राजा की सी रजधानी इस वन को किए जा रहे हैं ॥
फिर कहते थे—"हम जान गए—यह आज हो गए कौशल के ।
अब निर्जन से नाता कैसा युवराज होगए कौशल के ॥
भाई, कौशलपति से पूछो, वह न्यायशील कहलाते हैं ।
बेपूछे औरों के धन को—क्या इसी तरह हथियाते हैं ?"

प्रेम—सहित आदर सहित कर बहु भाँति उपाय ।
लव-कुश ने लौटा दिया—ज्यों-त्यों वह समुदाय ॥
शुभ मुहूर्त में हुआ जब, कौशल-नगर-प्रवेश ।
पहले पहुँचा अश्व वह पहुँचाने सन्देश ॥
छाया सत्य सुगन्ध सम घर घर में तत्काल ।
"वीणाधारी बालके हैं सीता के लाल ॥"

बेपानी वाला विरवा यह—जब वर्षा से लहलहा उठा ।
पत्ता पत्ता हर डाली का स्वागत का बाजा बजा उठा ॥
यज्ञस्थल जाने वाला पथ घेरा दर्शन के प्यासों ने ।
सुकुमार बालकों वाला रथ घेरा दर्शन के प्यासों ने ॥
पूरे विधान से—स्वागत के ले गए प्रधान रास्तों में ।
वर्णनातीत था हर्ष आज—नर, नारी वृद्ध बालकों में ॥
बरसों की हार्दिक अभिलाषा-होकर इस समय सफल प्रकटी ।
पथ-पथ पर पूरी पहुँनाई पग-पग पर प्रीति प्रबल प्रकटी ॥
आरति की राज जननियों ने बलिहारी होकर दोनों पर ।
सर्वस्व निछावर कर डाला सीता के सुघर सलोनों पर ॥

इस प्रकार करते हुए सब में सुख-सञ्चार ।
अश्वमेध की भूमि पर, पहुँचे राजकुमार ॥
उधर दर्शकों को मिला अतुलित प्रेमानन्द ।
इधर होगया पूर्ण वह—यज्ञकार्य सानन्द ॥
रघुपति ने गुरुदेव से कहा जोड़कर हाथ—
"सेवक की कुछ प्रार्थना सुनिए अब मुनिनाथ ।
सानन्द यज्ञ सम्पूर्ण हुआ अब एक सुकार्य किया जाए ।
शासन का भार ज्येष्ठ सुत को शुभ दिवस विचार दिया जाए ॥
मैं वर्तमान निज जीवन में परिवर्तन कर डालूँ क्रम से ।
सब रागों से लेकर विराग अनुराग करूँ योगाश्रम से ॥"
गुरु वशिष्ठ कहने लगे—है विचार यह ठीक ।
योगाश्रम का गमन है पुरुषाओं की लीक ॥
श्रीगणेश कर शीघ्र ही कर डालो शुभ काज ।
सीता भी लक्ष्मण-सहित आती होंगी आज ॥
जेठे को सिंहासन देना—वैसे तो उचित कहाता है ।
पर, मेरे मन में एक भाव, रह रहकर उठता आता है ॥
घर के जिन झगड़ों के कारण दशरथ का सुरपुर गवन हुआ ।
दण्डकवन में छाया बसन्त श्रीहीन अवध का भवन हुआ ॥
उन झगड़ों का इस बार राम, पूरा विचार रक्खा जाए ।
भ्राताओं के पुत्रों को भी शासन में भाग दिया जाए ॥
उनके भी दो दो बालक हैं, जो योग्य समझ में आते हैं ।
अधिकारी यद्यपि नहीं किन्तु अपने तो माने जाते हैं ॥
इसलिए साथ में लवकुश के उनका भी मान किया जाए ।
साम्राज्य आठ भागों में कर आठों के लिए दिया जाए ॥"

हर्ष सहित रघुराज ने किया इसे स्वीकार ।
अगले दिन आज्ञा हुई—"जुड़ जाए दर्बार ॥"
प्रभु बोले प्रजावासियों से—"शुभ अवसर आज सुहाया है ।
तुम सबके बल से राघव ने, संसारजयी पद पाया है ॥
अब यह इच्छा है पूर्व अवध—कुश को देदूँ यदि सम्मति हो ।
लव को-यदि आप उचित समझें तो वह उत्तरदिशि का पति हो ?
गुणा विदित भरत के युगल तनय वैनामा को श्रीपुष्कल का ।
यदि सम्मति हो तो नृपति करूँ दोनों को दक्षिण कोशल का ?
लक्ष्मण सुत चित्रकेतु अंगद पश्चिम कोशल के शासक हों ।
शत्रुहन—तनय मथुरा ही के—राजा रहकर संरक्षक हों ॥
हुई प्रजा में एक ध्वनि—है सबको स्वीकार ।
परिणत करिए कार्य में-प्रभु यह उचित विचार ॥
हागई विसर्जन राजसभा सबकी सम्मति मिल जाने पर ।
तब किए नियुक्त सचिव सहचर, प्रभु ने कोशल सजवाने पर ॥
आज्ञा दी मेरी अवधपुरी-इस भाँति सुसज्जित हो जाए ।
भूमण्डल भी सकुचा जाए सुरपुर भी लज्जित हो जाए ॥

❀ गाना ❀

अवध है मुझको प्राण समान ।
जननी जन्म भूमि है मेरी कोशलपुरी महान ॥ अवध० ॥
अन्न इसी धरती का खाकर—बने राम बलवान ।
पी पीकर सरयू का ही जल-पाया है सम्मान ॥ अवध० ॥
इसी धूल में लोट पोटकर-सीखा तीर-कमान ।
इसी मात की गोद में पल कर हुआ आज श्रीमान् ॥ अवध० ॥
'मोहन' इस रज पर न्योछावर, अमरपुरी छविखान ।
इसका नेह नहीं छूटेगा, मुझे इसी की आन ॥ अवध० ॥

—: ० :—

इधर राज्य अभिषेक का—होने लगा विधान ।
उधर कथा जो रह गई—सुनिए अब धर ध्यान ॥
रघुपति तो आए अवध, सुतों सहित सोल्लास ।
लक्ष्मण जी पहुँचे उधर, सीता माँ के पास ॥
कुटिया के बाहर वृक्ष तले, देखा बनवासिनि बैठी है ।
जोगिया वस्त्र तन पर धारे वैदेही विरहिन बैठी है ॥
था तो रविमण्डल बादल में, पर तेज नहीं छुप पाता था ।
तप से तपके काला वह तन सत् का प्रकाश फैलाता था ॥
कुटिया से थोड़ी दूर एक गङ्गा की धारा बहती थी ।
दूसरी धार बनवासिनि की, आँखों के द्वारा बहती थी ॥
सम्मुख थे लक्ष्मण पर आँखें लक्ष्मण को देख न सकती थीं ।
आराध्यदेव का अचल ध्यान मन के मन्दिर में करती थीं ॥
देखा लक्ष्मण ने जभी माता का यह हाल ।
हूक मारकर गिर पड़े चरणों में तत्काल ॥
उठी पुजारिन चौंककर, ज्यों ही टूटा ध्यान ।
देखा पग पर पड़े हैं श्रीलक्ष्मण गुणखान ॥
बोली—"हे लक्ष्मण तुम कैसे आए ? क्या इच्छा है ?
दासी के लिए-अवध से क्या-फिर आई कोई आज्ञा है ?
कुछ, हनुमत् अभी अवधपुर में जो गए साथ ले गुरुवर को ?
कुछ अनुचित तो न सुना डाला, उन दोनों ने अवधेश्वर को ?
वन में हो या प्रासादों में—सीता सर्वत्र उन्हीं की है ।
यह ही भावना यही पूजा इस वैदेही ने सीखी है ॥
वे स्वामी हैं तज सकते हैं, मैं नहीं उन्हें तज सकती हूँ ।
परलोक-लोक दोनों ही में—उनकी ही—उनकी ही हूँ ॥"

लषणलाल ने जब सुनी, व्यथित हृदय की बात ।
बोले—"रघुवर ने तुम्हें—तजा कहाँ है मात ?
यह परम पावनी दिव्य मूर्ति, यदि भूले भी त्यागी जाती ।
तो यज्ञ समय इसकी प्रतिमा, वामाङ्ग नहीं रक्खी जाती ॥
त्यागी थी सती शम्भु ने जब तब कब वामाङ्ग बिठाया था ।
सम्मुख में सादर आसन दे माता का भाव जताया था ॥
जिस जनता ने त्यागा तुमको अति दुखी आज होती है वह ।
निज भूल और निज करनी पर खुलखुलकर अब रोती है वह ॥
इतने पर भी—उन सोतों को प्रभु ने इस भाँति जगाया है ।
भवनों में नहीं, अयोध्या में माता, तुमको बुलाया है ॥"
"दोष न दो कुछ अवध को" बोलीं सीता मात—
"यह लीला जो कुछ हुई—थी होनी की बात ॥
पर सचमुच इस होनी द्वारा—मेरा अनन्त उपकार हुआ ।
खिंच आया सार सकल जग का जिससे संसार असार हुआ ॥
कुटियाओं की दिनचर्या ने, वन की एकान्त साधना ने—
रानी का भाव समाप्त किया, तब प्रभु को पाया सीता ने ॥"
देखी जब यह धारणा, यह अनुरक्ति अनन्य ।
गिरकर चरणों में लषण, बोले—"माता धन्य ॥"
प्रेम-मग्न रह कुछ समय फिर बोले सौमित्र—
"माँ अब पावन पगों से, करिए अवध पवित्र ॥
बाट जोहती है प्रजा, देर न आप लगाँय ।
प्रभु की आज्ञा है यही—शीघ्र सियाजी आँय ॥"
"हैं ? प्रभु की है आज्ञा ? प्रभु का है आदेश ?
सीता फिर आए अवध—कहते हैं अवधेश ?"

कुछ रुककर बोलीं–"एवमस्तु, अब तो यह दासी बेबस है।
आज्ञाकारिणी सदा से हूँ आज्ञा ही मेरा सर्वस है॥
मन-मन्दिर के आराध्यदेव, फिर सगुणरूप दिखलाओगे ?
तुम यहाँ वहाँ हो कहाँ नहीं ! फिर मुझे कहाँ ले जाओगे ?
तुम कहीं न जाते आते हो, मैं कहीं न जाती आती हूँ।
केवल जग के दिखलाने को लो, फिर सीता बन जाती हूँ॥"

यह कहकर उठ्ठी सिया–बाँधे बिखरे केश।
लव-कुश-जननी ने किया-जग जननी का वेष॥

बोलीं–"गुरु की प्यारी कुटिया लज्जित हूँ, तुझे छोड़कर मैं।
जीती है प्रीति जोड़कर तू हारी हूँ, प्रीति तोड़कर मैं॥
बनदेव हृदय से तुम्हें न यह वनदेवी त्यागन करती है।
यह तो बन और नगरपति की आज्ञा का पालन करती है॥
हे मृगशावकगण, गोवत्सो तुमको न कभी भूलूँगी मैं।
'बन के जीवों का ध्यान रहे' यह लव-कुश से कह दूँगी मैं॥
हे विल्वपत्र, हे तुलसीदल ! हाथों से तुमको सींचा है।
संसार पूजता रहे तुम्हें आशीष यह ही सीता का है॥"

इस प्रकार सबसे विदा–हुई सिया कर जोर।
आश्रम शिष्यों पर तजा, चलीं अवध की ओर॥

जो अश्व कभी वन-मृग-समान–जाते दिखलाई पड़ते थे।
चलते थे नहीं, हिनहिनाकर, लक्ष्मण के रथ से लड़ते थे॥
वे ही अब कौशल के पथ पर, बिन हाँके बढ़ते जाते हैं।
फिर अपनी महाशक्ति पाकर–फूले अँग नहीं समाते हैं॥
रथ को लगती है ठेस कहीं, तो यही समझ में आती है—
'सीता पुत्री से मिलने को, पृथ्वी माता अकुलाती है'॥

घोड़ों की डोर लषण जी पर लक्ष्मण की रघुवर के कर है ।
रघुवर की डोर बतादें हम ? उनके प्रिय प्रजाजनों पर है ॥
उस चलते हुए प्रकृति रथ में—जगदम्बा शक्ति सुहाती है ।
जो लीलामय की इच्छा से, जग को लीला दिखलाती है ॥

पथ में भागीरथी का लेकर आशीर्वाद ।
लषण सहित पहुँचीं सिया—कौशलपुर साह्लाद ॥

स्वर्गीय शब्द करता वह रथ, इस भाँति अवधपुर जा पहुँचा ।
मानो त्रेतायुग के भीतर, बरियाई सतयुग आ पहुँचा ॥
काई की नाईं कौशल से, हट गईं व्यर्थ की बाधाएँ ।
कुहरे की तरह अयोध्या से फट गईं व्यर्थ की बाधाएँ ॥
दर्शन के लिए प्रजा मण्डल, इस भाँति आज उमड़ा उठ्ठा ।
मानो—फिर अपनी गई शक्ति, बरसों का रोगी पा उठ्ठा ॥

ज्योंही लव-कुश ने सुना—अवध आगई मात ।
आज्ञा ले गुरुदेव से पहुँचे दोनों भ्रात ॥

कौशलपुर में भी वे बच्चे, चिपटे माता के चरणों में ।
नर—नारि निरखते थे—बेटे, लिपटे माता के चरणों में ॥
माता ने भी विह्वल होकर, गोदी में लेकर प्यार किया ।
अपनी इच्छा बल के द्वारा, परिपूर्ण शक्ति—भण्डार किया ॥
यह भक्तिभाव यह धर्मभाव देखा जब अवधवासियों ने ।
कुछ नया तेज कुछ नया पुण्य, पाया तब अवधवासियों ने ॥

जहाँ टिके थे—गुरु सहित, लव-कुश दोनों भ्रात ।
सादर ठहराई गईं वहीं जानकी मात ॥
वानर—मण्डल ने सुना जब यह शुभ संवाद ।
आया निज टोली सहित दर्शन को साह्लाद ॥

देखा मृगछाला के ऊपर संन्यासिनि सीता बैठी हैं।
अपने दोनों सुकुमारों को—समयोचित शिक्षा देती हैं॥
बच्चे माता की शिक्षा को हृत्पट पर लिखते जाते हैं।
अपने विशाल जीवनपथ को निष्कण्टक करते जाते हैं॥
यह दृश्य देखकर शारद भी उस समय वहाँ खो जाती है।
ऐसी महान् विदुषी माँ पर, बलिहारी हो हर्षाती है॥
भक्तों की टोली बोल उठी—'जय ज्ञानेश्वरी प्रणाम तुम्हें'।
दासों की टोली बोल उठी—'जय मातेश्वरी प्रणाम तुम्हें'॥

सीता ने—देखा जभी आता कीश समाज।
बिठलाया आदर सहित पुनः पूर्ववत् आज॥

बोलीं—"लव-कुश ही के समान, तुम सब भी मेरे प्यारे हो।
कर्तव्य-गगन की चादर पर सुन्दर चमकीले तारे हो॥
तुम सबको फिर सामने देख, यह वृद्ध हृदय हर्षाया है।
विधना ने बिछुड़े बेटों से, माँ को फिर आज मिलाया है॥

लव-कुश को जो दिया वह तुम भी लो उपहार—
सुनो, सुनाती हूँ तुम्हें परम धर्म का सार—

लेते ही जन्म प्राणियों का, जो कार्यक्षेत्र में लाता है—
वह धर्म प्रकृति का दिया हुआ स्वाभाविक धर्म कहाता है—
आगे, चलकर जब गुरु द्वारा वर्णाश्रम धर्म प्राप्त होता—
तब पड़ता जीव गृहस्थी में शिक्षा का क्रम समाप्त होता॥
'कुल-धर्म' और फिर 'जाति-धर्म' उस समय सामने आते हैं।
क्रमशः समाज के संचालक, 'सामाजिक-धर्म' सिखाते हैं॥
फिर 'देश-धर्म' या 'विश्व-धर्म' आते हैं सम्मुख प्राणी के।
बनते जाते हैं वही धर्म धीरे धीरे सुख प्राणी के॥

पर सच्चा धर्म कौन सा है यह नहीं समझता है प्राणी ।
थोड़े से जीवन में अपने-सब ओर भटकता है प्राणी ॥
मैं कहती हूँ मुनि कहते हैं-है सार यही श्रुति-वाणी का---
अपने स्वरूप का ज्ञान करे, यह परम धर्म है प्राणी का ॥
हम क्या हैं और जगत् क्या है? क्यों आए हैं? क्या करना है?
क्या वस्तु यहाँ पर जीना है? क्या चीज़ यहाँ पर मरना है ॥
सच्चिदानन्द कहते जिसको उसमें हममें क्या अन्तर है ।
इसकी ही सतत् खोज करना-सारे धर्मों से बढ़कर है ॥
जिस अवसर आत्मा से अपना साक्षात्कार करता प्राणी ।
उस अवसर ही सब धर्मों पर पूर्णाधिकार करता प्राणी ॥
इस कारण नित सत्संगित कर, सत् का सर्वदा मनन करना ।
है सब धर्मों का सार यही-कुछ समय 'आत्मचिन्तन' करना ॥

❀ गाना ❀

वही सच्चा सन्यासी है—
माया मोह मिटाया जिसने, लालच, लोभ हटाया जिसने—
शुद्ध आत्मपद पाया जिसने, जग से हुआ उदासी है ॥
सुख दुख को जो एक मानता, जन्म मरण को खेल जानता ।
सोऽहं सोऽहं रट हो जिसकी, वह ही तो अविनाशी है ॥
"मोहन" जीवनमुक्त वही है, सब धर्मों से युक्त वही है ।
भक्त वही है मुक्त वही है, निज पद का जो वासी है ॥"
वही सच्चा सन्यासी है ॥

—:०:—

सतवन्ती ने पा लिया उधर पूर्ण सम्मान ।
इधर राज्य-अभिषेक का आया दिवस महान ॥
सब मग जगमग-जगमग सा था-मणि मुक्ताओं से मढ़ा हुआ ।
था ऊँच नीच का भेद नहीं, यह प्रेम-भाव था बढ़ा हुआ ॥
वेदध्वनि विप्रवृन्द में थी, शस्त्रों के खेल क्षत्रियों में ।
था तिरस्कार वैश्यों का, सेवा-प्रबन्ध था शूद्रों में ॥
मङ्गलाचार के मधुर गीत नारी-समुदाय सुनाता था ।
'चिरजीवी हो अपना राजा' नर-मण्डल मुदित मनाता था ॥
धौसों ने धौंस बिठाई वह जग को-धर्राए देते थे ।
शंखों के नाद स्वर्ग तक को इस समय हिलाए देते थे ॥
उद्यान सकल रजधानी के-हो रहे सफल फल फूलों से ।
रसिकों के हृदय झूलते थे—उन्मत्त पवन में झूलों से ॥
सरयू भी ले लेकर उछाह-आपे में नहीं समाती थी ।
'जीवन स्वतन्त्रता' का अच्छा यह कहती बहती जाती थी ॥
जगपति-जगदम्बा के समेत-जिस जगह प्रकाश दिखाता है ।
उस कौशलनगरी का वर्णन-किस कवि से वर्णा जाता है ॥
कहना यह है मिल गई आज जग की सुन्दरता कौशल को ।
शारद की प्रतिभा सहित मिली-लक्ष्मी की आभा कौशल को ?
स्वच्छता यहाँ तक थी-जिसका-सुरदल तक को भी ध्यान न था ।
पृथ्वी क्या नभमण्डल पर भी स्याही का नाम-निशान न था ॥
इधर अवध सब विधि बना सुन्दरता का धाम ।
उधर पधारे महल में अवधेश्वर श्रीराम ॥
अति उत्तम अवसर निरख किया सिया का ध्यान ।
शक्ति-स्वरूपा जानकी, प्रकटी आज्ञा मान ॥

प्रभु बोले–"देवी, हुआ हरण धरा का भार।
असुर गणों का भी हुआ–पूर्णतया संहार॥
जिस हेत जगत् में आए थे वे कार्य पूर्ण कर डाले हैं।
भक्तों पर जितने सङ्कट थे क्रमशः समस्त हर डाले हैं॥
अब चलना है साकेत धाम कर लिया कर्म कर्मस्थल पर।
भक्तों के हित नानाचरित्र–दिखलाये अब तक भूतल पर॥
अन्तिम आदर्श प्रजावाला, राजाओं को दिखलाया है।
कर दिया नारि का त्याग किन्तु नृपपद को नहीं गिराया है॥
वामाङ्ग तुम्हारी प्रतिमा रख, पत्नीव्रत भी दिखला डाला।
कैसे निभते हैं धर्म-अङ्ग यह सब जग को बतला डाला॥
अब अपना मत दिखलाओ तुम इस भूतल के प्राणीदल को।
बतलाओ पातिव्रत-गौरव, भूमण्डल पर, भूमण्डल को॥
निज चमत्कार की लीला से छाया पृथ्वी लय करलो।
सम्पूर्ण होगई सब यात्रा अब अन्तिम पथ भी तय करलो॥"
'जो आज्ञा' कहकर हुई, वह छवि अन्तर्ध्यान।
तभी पधारे वहाँ पर श्री सौमित्र सुजान॥
बोले–"अभिषेक-भवन भगवन् जनगण से भरता जाता है।
इस समय आपका गुप्त जगह, रहना क्या शोभा पाता है?
गुरुदल ब्राह्मणदल पहुँच गया हम लोगों ही की देरी है।
मन्त्रीदल की भी–मण्डल में दो बार लग चुकी है फेरी है॥"
यह सुनकर प्रभु ने कहा–"है यदि ऐसी बात—
तो तैयार होकर अभी चलता हूँ मैं भ्रात॥"
इधर राम लक्ष्मण सहित होने लगे तैयार।
उधर चले दर्बार को–आठों राजकुमार॥

नगरवासियों के नयन—तैरे होकर मीन ।
थाह न पाई तो हुई रूपसिन्धु में लीन ॥
कितने निर्मल, कितने पावन, कितने मन-भावन मुखड़े हैं ।
मानों—पृथ्वी पर आठ चन्द्र, रविवंशी होकर उतरे हैं ॥
केवल वस्त्रों ही का प्रकाश करता है नीचा नयनों को ।
तिसपर नव रत्नों से मण्डित पहने हैं बहुवेध गहनों को ॥
मृदु हँसन दर्शकों के मन को बरियायी हथिया लेती है ।
चितवन—चहुँ ओर चितेरों को चटकों में बाँका देती है ॥
चालाक चाल पर मरते हैं, भोले उन भोले मुखड़ों पर ।
पर हम तो बलि-बलि जाते हैं उन कोमल-कोमल चरणों पर ॥

इस प्रकार करते विजय, सबका हृदयस्थान ।
आए राज-समाज में, आठों रूपनिधान ॥
गूँज उठा दर्बार में उसी समय 'जयनाद' ।
आगे बढ़ मन्त्रियों ने बिठलाया साह्लाद ॥

तपसिन के बच्चों ने देखा सिंहासन आठ सुहाते हैं ।
जिनके समीप ही दाएँ पर गुरु बैठे शोभा पाते हैं ॥
गुरु आसन ही से सटे हुए थे, चार और सिंहासन भी ।
जिनके पीछे थे मन्त्रीगण, निशचर, वानर, पुर-परिजन भी ॥
दूसरी ओर थे वाल्मीकि उनके समीप-मुनिमण्डल था ।
सम्मुख शोभित था ब्राह्मणदल, जिनके पीछे चारणदल था ॥
पीछे की ओर तनिक ऊँचे थे मञ्च राजमाताओं के ।
उन मञ्चों के दाएँ बाएँ—आसन थे पुर ललनाओं के ॥
मण्डप में चित्रकार श्रेणी थी निज मञ्चों पर साज रही ।
पीछे तीनों की ओर और दर्शक-मण्डली विराज रही ॥

निरख रहे थे यह छटा जब वे चतुर कुमार ।
'राजा की जय' से तभी गूँज उठा दर्बार ॥
देखा भरतादिक सहित, रघुराई, रघुवीर ।
धीरे धीरे आगए उन मञ्चों के तीर ॥
चारों भाई आसीन हुए ज्योंही चारों मञ्चों पर हैं—
चहुँ ओर हुआ यह आभासित दुनिया में चार दिवाकर हैं ॥
ब्राह्मणदल ने वेदध्वनि की, सुरमण्डल मे 'जयनाद' हुआ ।
राज्याभिषेक का उसी समय, प्रारम्भ कार्य साह्लाद हुआ ॥
मध्यभाग में-वन्दिजन पाकर प्रभु आदेश—
सभी उपस्थित जनों मे कहने लगे सँदेश—
"सर्वमतों से हुआ जो निश्चित प्रथम विचार—
देंगे कुश को राज्य प्रभु उसी सुमत अनुसार ॥
पर इसके पूर्व अयोध्यापति, फिर निर्णय किया चाहते हैं ।
प्राणों से प्यारी जनता की सम्मति भी लिया चाहते हैं ॥
पिछले निर्णय से यदि कोई सन्तुष्ट न हो अपने मन में—
तो निस्सङ्कोच प्रकट करदे वह अपनी इच्छा गुरुजन में ॥"
प्रजा सम्मिलित कण्ठ से बोली तभी पुकार—
"पिछला निर्णय ही हमें है सब विधि स्वीकार ॥"
तब कुश ने उठकर कहा-"सुने सभी दरबार—
कौशलपुर का राज्य है हमें नहीं स्वीकार ॥
जो जनता जनप्रिय राजा से-रानी का त्याग कराती है ।
सतवन्ती के पावन सत पर मिथ्या सन्देह उठाती है ॥
जिसके विचार भ्रम-भूल भरे, त्यागन की हद तक जाते हैं--
उस जनता को गुरुकुल ही मे, हम दोनों शीश नवाते हैं ॥

ऐसी रैयत के शासन को वह लेगा जो बड़भागा है।
हम दोनों तो उस माँ के हैं जिसको स्वामी ने त्यागा है॥
यदि माँ वनवासिनि जग में है तो बेटे भी बनवासी हैं।
सन्यासिनि के जाए बच्चे वे जन्म-जात सन्यासी हैं॥
जबतक-माता का नहीं होता उचित विचार।
राजा बनना है हमें, तबतक अस्वीकार॥"
नरदल में गर्जा तभी यो केहरी किशोर—
सन्नाटा सा छागया सभा-मध्य चहुँ ओर॥
उठे पवनसुत भी तभी रह सके न अब मौन—
बोले-"सीता मात को, दोष लगाता कौन?
जिन आँखों ने सतवन्ती की आभा देखी है लङ्का में।
जिन कानों ने क्षत्राणी की गर्जना सुनी है लङ्का में॥
जो अग्नि-परीक्षा की घटना अवलोक चुके हैं आँखों से।
वे ही निर्णय कर सकते हैं माता का चरित, प्रमाणों से॥
उनका दावा है निष्कलङ्क, निर्दोषिनि माता सीता हैं।
श्रीरामचन्द्र चन्द्रानन की अति पावन चारु चन्द्रिका हैं॥
इस पातिव्रत का उदाहरण—है नहीं कहीं त्रयलोकों में।
महलों में रहने वाली ने, रक्खा पतिधर्म अशोकों में॥
प्रस्तुत कर दूँगा साक्षी में-उस वन के लिए सिपाही को।
आएँगे सूरज चाँद उतर. देने के लिए गवाही को॥
शारद भी माता के विरुद्ध-कर सकती कुत्सित घोष नहीं।
ब्रह्मा दोषी हो सकता है. माता में कोई दोष नहीं॥"
त्रिजटा के भी हृदय में-उठ्ठा एक उबाल।
वह भी ऊँचे स्वरों में बोल उठी तत्काल —॥

"उससे पूछो माता क्या हैं—जो रही साथ है माता के ।
जिसने अपनी आँखों देखे, वे दिवस अशोक-वाटिका के ॥
यदि नहीं एक दिन में होती तो चिता वहाँ पर जल जाती ।
यह राजसभा जो लगी आज होकर सुनसान बदल जाती ॥
माता ने रक्खा पातिव्रत अपनी हड्डियाँ सुखाकर है ।
छूना क्या देखा भी न कभी, निश्चर को दृष्टि उठाकर है ॥
कब मिटता है सत् का प्रकाश, शङ्का की रज छाजाने पर ?
होता है चन्द्र नहीं मैला, बादल आगे आजाने पर ॥
ऐसी सतवन्ती का त्यागन सचमुच अति पाप होगया है ।
दुर्दैव अवध के खेतों में अपयश का बीज बोगया है ॥
यदि बदला इसका लेने को जगजननी शीश उठाएगी ।
सूरज काला पड़ जाएगा, पृथ्वी—चौपट होजाएगी ॥
पत्ते पत्ते की साक्षी है, कण-कण दे रहा सफ़ाई है ।
जनता माता का न्याय करे, त्रिजटा की यही दुहाई है ॥"

भुजा उठा बोले तभी, वाल्मीकि मुनिराय—
"मैं भी यही पुकारता आज न्याय होजाय" ॥

"वनदेवी जिसका नाम धरा, पुत्रीवत् जिसको पाला है ।
वह जग में उजियाली हो तो—आश्रम में भी उजियाला है ॥
अन्यथा शपथ-पूर्वक कहता—शङ्का सम्पूर्ण हरूँगा मैं ।
पुत्री में मेरी दोष नहीं तप-बल से सिद्ध करूँगा मैं ॥"

राज रहे थे निकट ही मिथिला के नरराज ।
बोल उठे—"अविलम्ब ही हाँ निर्णय हो आज ॥
है वशिष्ठ मुनि को उचित अभी समाधि लगायँ ।
जो कुछ सच्ची बात हो जनता को बतलायँ ॥"

यह सुनकर ब्रह्मर्षि ने, की समाधि से जाँच ।
झूठ आँच में मिल गया, रहा साँच का साँच ॥
तब आसन से खड़े हो, बोल उठे गुरुराय ।
"सचमुच सीता पर किया कौशल ने अन्याय ॥
माथे पर अवधपुरी के यह-टीका है एक बुराई का ।
धोता है आज उसे ब्राह्मण, पानी लेकर सच्चाई का ॥
सब लोग सुनें सब लोग सुनें तम हटा रवि प्रभा उदय हुई ।
सतवन्ती सीता देवी की इस भरी सभा में विजय हुई ॥"
रो उट्ठी सारी प्रजा था वह हार्दिक क्लेश ।
पानी-पानी होगया मानो अवध-प्रदेश ॥
बोले सब करते हुए पश्चाताप महान—
"माता जी आएँ यहाँ करदें क्षमा-प्रदान ॥
ठुकराएँ भी वह तब भी हम ऊपर न उठाएँ शीशों को ।
इन लज्जित आँखों के जल से धोएँगे उन श्रीचरणों को ॥
हम सब बड़भागी आज हुए हम में उजियाली आज हुई ।
महलों की महिमामयी मात फिर महलों वाली आज हुई ॥"
पवनतनय ने उठ तभी किया हर्ष का नाद ।
बोले—पूरा होगया—प्रण मेरा साह्लाद ॥"
वाल्मीकि भी कह उठे—"गया हृदय का रोग ।
बनवासी का भी हुआ पूर्ण आज उद्योग ॥"
राजकुमारों से कहा—"अब न लगाओ बार ।
देते हैं जो अवधपति करो उसे स्वीकार ॥"
गुरु समेत तत्क्षण उठा सारा विप्र समाज ।
पूर्ण किया अभिषेक का रीति-सहित सब काज ॥

इस प्रकार निर्विघ्न जब हुआ राज्य-अभिषेक ।
तभी जोगिया वस्त्र में आई जोगिन एक ॥
बोली—"प्रभु-पद पङ्कज भ्रमरी बन-बन इस कारण भटकी थी—
अपनी आँखों यह दिन देखे, बस यही लालसा अटकी थी ॥
फिर सूर्यवंश के गौरव की—'श्री' भी सँभालकर रखनी थी ।
रघुकुल के राजमुकुट की मणि जग में उजालकर रखनी थी ॥
इन बातों के साथ ही एक और थी बात—
जिसके कारण-विश्व में होती दिन की रात ॥
सीता से नहीं प्रजा का दल साध्वी के सत् से लड़ता था ।
इसलिए सती-मरणान्त मारा बदले के लिए उबलता था ॥
यदि उसी अवस्था में सीता निज प्राणों को खोती जग में !
तो अवधपुरी की गिनती क्या कल्पान्त प्रलय होती जग में ॥
पृथ्वी सागर में लय होती, सूरज भी ठण्डा पड़ जाता ।
उस आत्मघात के बदले में—सारा संसार उजड़ जाता ॥
शङ्कावादी दल का विनाश—बस एक शाप पर रक्खा था ।
पर मेरी सहनशक्ति ने ही यह शाप रोककर रक्खा था ॥
अब क्षमा माँगने के कारण सब दूर हृदय की व्यथा हुई ।
मैं हुई यहाँ की साम्राज्ञी, यह प्रजा वही फिर प्रजा हुई ॥
अचलक मौखिक बात थी भ्रम करने को चूर ।
अब आँखों से देखकर संशय करदो दूर ॥
'माँ पृथ्वी यदि स्वामि तज पुरुष न निरखा और ।
तो तुम अपने गर्भ में दो सीता को ठौर' ।"
यह सुनते ही फट गया तत्क्षण वह भू-भाग ।
जग ने देखा सती का यह प्रभाव बेलाग ॥

पृथ्वी फटते ही—उसमें से—सुन्दर सिंहासन प्रकट हुआ।
देवी-स्वरूप में दिव्य तेज-साध्वी सीता के निकट हुआ॥
धीरे-धीरे सब हुआ मिट गया भेद दो दो तन का।
पृथ्वी प्रवेश प्रारम्भ हुआ सँग शक्ति-सहित सिंहासन का॥

प्रभु ने दम्पति प्रेम की फिर दिखलाई शान।
दौड़े उस छवि की तरह छोड़ सभा का ध्यान॥
बोले—"जाती हो कहाँ तज राघव का साथ"।
यह कहकर उस मूर्ति का पकड़ा दाँया हाथ॥
इस झाँकी ने विश्व पर डाला जभी प्रकाश।
जय से 'सीता-राम' की गूँज उठा आकाश॥
सुरगण ने दी दुन्दुभी, कर पुष्पाञ्जलि दान।
वेद भाट के रूप में, कर उट्ठे यह गान—

* गाना *

१—"पतिधर्मो पितृप्राणां पवित्रां पुण्यवर्द्धिनीम्।
भक्त्यनुगामी वयं सर्वे जानकी रामवल्लभाम्॥
२—सतीना वै सदाचारः यथा प्रीत्या प्रदर्शितः।
चन्द्रिका रामचन्द्रस्य जानकी रामवल्लभाम्॥
३—सम्पत्तौ च विपत्तौ च यथा एका च चेतसा।
पालिता पतिभक्तस्तां जानकी रामवल्लभाम्॥
४—भूषणं कुलनारीणां जीवनं शक्तिजीविनाम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां जानकी रामवल्लभाम्॥"

उपसंहार

जगदम्बा का हो चुका पृथ्वी मध्य पयान ।
मेहमानों ने भी किया निज-निज गृह प्रस्थान ॥
नए शासकों ने लिया कर में शासन-काज ।
अटल होगया विश्व में—सत्य, धर्म का राज ॥
रघुवर भ्राताओं सहित कर सरयू-तट वास ।
जग से एक प्रकार का—ले बैठे संन्यास ॥

जो माया से बाहर होकर—अध्यात्म आत्मपथ लेता है—
पर-दुख जिसको देता है दुख पर-सुख जिसको सुख देता है—
जो—अपनी ज्ञान रश्मियों से भूले को मार्ग दिखाता है—
अपना सुधार कर चुकने पर जो जन सुधार को जाता है ॥
वह ही सच्चा संन्यासी है, उसका ही जीवन जीवन है ।
इतिहास, काव्य में सदा अमर रहता उसका ही वर्णन है ॥
अवतार जगत्पति ने लेकर यह सब रहस्य बतलाया है ।
अब अन्त समय सरयू-तट पर चौथा आश्रम दिखलाया है ॥

नित्य आत्म-अध्ययन था, नित्य साधु सत्सङ्ग ।
संन्यासी रघुनाथ का था अब यह ही रङ्ग ॥
जो भी आता था वहाँ, उनके दर्शन काज ।
समझाते थे आत्मपद, उसको श्रीरघुराज ॥

इस भाँति बहुत दिनतक प्रभु ने, भक्तों के लिए कृतार्थ किया ।
परमार्थ दिखाकर दुनिया को मानवी चरित चरितार्थ किया ॥

तब एक दिवस इच्छा करली–साकेतधाम को जाने की–
नटनागर के पट को उतार–रङ्गस्थल से हट जाने की ॥

प्रभु की इच्छा ने किया धारण जब यह रूप ।
तभी पधारा उस जगह तापस एक अनूप ॥
आते ही उसने कहा–"विनय सुनें रघुराय ।
लेकिन सुनने के प्रथम अन्तरङ्ग होजाय ॥"
यह सुनते ही हट गए, भरत शत्रुहन साथ ।
किन्तु लषण को रोककर–बोले श्रीरघुनाथ ॥

"जबतक मैं बात करू मुनि से तब तक तुम द्वारे ही रहना ।
यदि कोई मिलने को आए–तो उसको रोके ही रहना ॥
यद्यपि आश्रम में रोकथाम अनुचित ही समझी जाएगी ।
पर क्या करिए इन मुनिवर की हठ भी तो रक्खी जाएगी ॥"

"जो आज्ञा" कहकर किया लक्ष्मण ने प्रस्थान ।
तब तापस कहने लगा–"सुनिए दयानिधान ॥

मुनि–वस्त्रों में यह धर्मराज, सेवक रघुराज तुम्हारा है !
या यों कहिए ब्रह्माजी का, आपहुँचा यह हरकारा है ॥
साकेत-गमन की प्रभुवर के मन में जो प्रकटी इच्छा है ।
उस इच्छा-बल ने पहुँचाया ब्रह्मा के पास सँदेशा है ॥
बस उसी सँदेशे का स्वरूप—यह सेवक सम्मुख उत्सुक है ।
क्या कहे विधाता से जाकर ? आज्ञा सुनने का इच्छुक है ॥
सुरवृन्द वहाँ पर—गिनता है घड़ियाँ दर्शन के पाने की ।
कमला भी राह देखती है कमलेश आपके आने की ॥"

मुस्काकर प्रभु ने कहा—"हैं सब व्यर्थ अधीर ।
पूर्ण कर चुका कार्य सब जब यह मनुज शरीर ॥
साकेत-वासियों से कहना दो दिन में वहाँ पहुँचता हूँ ।
सारा क्रम अपनी यात्रा का बस इसी समय से रचता हूँ ॥
मुझसे भी पहले लक्ष्मण की क्या कहूँ तबीयत उचटी है ।
शेषावतार की इसीलिए बस प्रथम यात्रा लगी है ॥
फिर भरत शत्रुहन के समेत, यह रामचन्द्र भी आता है ।
विधि का विधान यह ही तो है जो आता है वह जाता है ॥
यह जन्म नहीं, वह मरण नहीं, था कृत्य एक जो पूर्ण हुआ ।
होगया भूमि का भार हरण, राक्षस दल का मद चूर्ण हुआ ॥"

पूरी कहने भी नहीं पाए थे—प्रभु बात ।
वापिस आए द्वार से तत्क्षण लक्ष्मण भ्रात ॥
कहा चौंककर राम ने—"हैं ! यह क्या है हुक्म ?
द्वार छोड़कर किसलिए आज्ञा करदी भङ्ग ?"
अनुज बोल उठे—"हुआ यों यह अनुचित कार्य ।
रोक नहीं सकता लक्ष्मण, विधि का कृत अनिवार्य ॥

द्वारे दुर्वासा कहते हैं-ऋषि आज्ञा पालन कर आओ ।
हम मिलना अभी चाहते हैं, सन्देश इसी क्षण पहुँचाओ' ॥
अत्यन्त प्रार्थना की मैंने, पर नहीं सुनी श्री मुनिवर ने ।
'देहावसान का शाप मुझे दे डाला क्रोधी मुनिवर ने ॥
लाचार उन्हें ठहराकर मैं—आया कर्तव्य चुकाने को ।
वे द्वारे पर हैं खड़े हुए प्रभु का उत्तर पा जाने को ॥
यदि आज्ञा हो तो आने दूँ इस जगह तलक उन ऋषिवर को ।
अथवा दिखलादूँ धनुषयज्ञ वाला फिर रूप जगत भर को ?"

धर्मराज जो खड़े थे बाना मुनि का धार—
प्रभु के इस क्रम को निरख हँसे ठहाका मार ॥
फिर प्रणाम कर हुए वह क्षण में अन्तर्ध्यान ।
तब लक्ष्मण से इस तरह बोले दयानिधान—
भैया, विधना का लिखा हुआ मिटाया है नहीं मिटाए से ।
होनी होकर ही रहती है हटती है नहीं हटाए से ॥
सन्ध्या को प्रायश्चित्त करो सरयू के रुचिर किनारे पर ।
साकेत पधारो पंचभूत का तन तज स्वर्ग द्वारे पर ॥
मुझको भी यहाँ न रहना है-पीछे से मैं भी आऊँगा ।
शत्रुहन भरत के साथ साथ, साकेत धाम ही जाऊँगा ॥
अच्छा अब दुर्वासा ऋषि को इस जगह बुलाओ आदर से ।
वे निर्दोषी हैं यह सब क्रम बनकर आया था ऊपर से ॥"
'जो आज्ञा' कहकर लषण चले नवाकर माथ ।
दुर्वासा मुनि को तुरत, लाये अपने साथ ॥
किया बैठने का जभी प्रभु ने प्रिय अनुरोध ।
तप तपस्वी हृदय का उड़ा धूम्र सा क्रोध ॥
बोले ऋषि "अपराध को क्षमिये दयानिधान ।
क्रोधरूप बैताल ने नष्ट कर दिया ज्ञान ॥
अब दर्शन कर इस श्रीमुख का आगया होश कुछ जन को है ।
क्या किया, क्या कहा, पता नहीं हाँ खेद बहुत ही मन को है ॥"
प्रभु बोले—"वह सब जाने दो होनी का एक इशारा था ।
इसलिये तुम्हें कुछ याद नहीं उसमें कुछ नहीं तुम्हारा था ॥
अच्छा कहिये क्या आज्ञा है ? किसलिए कृपा की है भगवन् ।
सुधि आज बहुत ही दिनों बाद, इस सेवक की ली है भगवन् ॥"

मुनि बोले—"उस कार्य से आया हूँ भगवान—
हम लोगों के लिए भी हो कुछ जगह प्रदान ॥
जप-तप करने के लिए हमें, उत्तराखण्ड बस मिल जाए ।
युग-युग तक वह ही तपोभूमि, हम तपस्वियों की कहलाए ॥
जो भी उपराम जगत् से हों—वे जाकर वहाँ निवास करें ।
स्वच्छन्द वहाँ पर संन्यासी—पालन अपना संन्यास करें ॥"
प्रभु बोले—मुनिवृन्द का है सब जगह प्रवेश ।
उत्तर क्या उनके लिए है यह सारा देश ॥
अब तक सर्वत्र रहे हैं वे—अब भी सर्वत्र रहेंगे वे ।
पृथ्वी के कोने-कोने में स्वच्छन्द सदा विचरेंगे वे ॥
पर आप आज्ञा देते हैं, तो यह भी कार्य करा दूँगा ।
उत्तराखण्ड ऋषि मुनियों की तपभूमि प्रधान बना दूँगा ॥
विदा होगए महामुनि कहकर—"जो आदेश ।"
पुत्रों तक पहुँचा दिया, प्रभु ने यह सन्देश ॥
उसी दिवस दोपहर को बैठे जब रघुनाथ ।
गुरु वशिष्ठ आए वहाँ भरतादिक के साथ ॥
आते ही श्रीगुरुवर बोले—"हे राम, छुपी अब कहता हूँ ।
बरसों से बँधकर बन्धन में किसलिए अवध में रहता हूँ ॥
सम्पूर्ण सुजन यह कहते हैं—'उपरोहित कर्म न अच्छा है' ।
फिर भी मैंने ब्रह्माजी की अब तक पाली यह आज्ञा है ॥
कारण क्या था कहदूँ जिसने मैंने यह भार उठाया था ।
रामावतार का लाभ मुझे चतुरानन ने बतलाया था ॥
बस इसी लाभ के हेतु रहा उपरोहित ही कहलाकर मैं ।
इस श्याम मूर्ति को प्रेम अग्नि छाती में दबा दबाकर मैं ॥

अब आज योग से देखा है साकेत-धाम तुम जाते हो ।
अपने इस वृद्ध पुरोहित को, बोलो ? क्या दान दिलाते हो ?
बस यही चाहता हूँ तुमसे यह हृदय तुम्हारा धाम रहे ।
हो जाए राममय रोम-रोम, इस रोम-रोम में राम रहे ॥"

'एवमस्तु कहते हुए उट्ठे प्रभु तत्काल—
गुरुवर के श्रीचरण में दिया शीश निज डाल ॥
इधर हुए इस खबर से सारे लोग अधीर ।
'दुर्वासा के शाप से तजते लक्ष्मण शरीर' ॥

कौशल का बच्चा-बच्चा तक, सरयू पर उस अवसर पहुँचा ।
शेषावतार जब लय करने छाया जल के भीतर पहुँचा ॥
श्रीरामचन्द्र के साथ-साथ सीता माता का ध्यान किया ।
ब्रह्माण्ड फोड़ तेजस्वी ने इस दुनिया से प्रस्थान किया ॥

महापर्व अगले दिवस था सरयू के तीर ।
नभ पर देव समाज था जल में श्रीरघुवीर ॥
लक्ष्मणलाल की भाँति ही, कर सियापति का ध्यान ।
भरत, शत्रुहनलाल ने पहले किया पयान ॥

फिर जग के ज़र्रे ज़र्रे को अपना अन्तिम दर्शन देकर ।
सम्पूर्ण प्रकृति से द्वापर में आने का विमल वचन देकर ॥
इस भूमण्डल के स्वामी ने, भूमण्डल से प्रस्थान किया ।
अमरत्व दान हनुमत् को दे, अपने को अन्तर्ध्यान किया ॥"

ठहर गए कैलाशपति, कह इतना इतिहास ।
बोले—"अब तो कुछ नहीं रक्खा मैंने पास ॥
गिरितनये अब 'इति' हुई बहुत किया विस्तार ।
राम अकथ हैं राम की गाथा अकथ अपार ॥

फिर भी क्रम से कह गया मैं सम्पूर्ण चरित्र ।
जिसको सुनकर होगईं तुम भी आज पवित्र ॥
अब केवल साकेत का शेष रहा है ध्यान ।
सुनो उसी का ध्यान दे, यह संवाद प्रधान ॥
साकेतधाम में जाते ही फिर सभा राम की साज गई ।
प्रभु सिंहासन पर दाएँ थे, सीता वामाङ्ग बिराज गई ॥
सौमित्र राम के चरणों को—शत्रुहन समेत दबाते थे ।
श्रीभरतलाल निज हाथों से प्रभुवर को चँवर डुलाते थे
देववृन्द आए तभी, की आरती [illegible]
"मोहन" मीठे स्वरों में गूँज उठा यह गीत—

❀ गाना ❀

—: o :—

जय सीतापति राम, जय—जय सीतापति राम ।
अखिल-विश्व के स्वामी, अखिल-विश्व के स्वामी, बल-बुद्धि-छवि-गुण-धाम ।
जय जय — सीतापति राम ॥
छाता अभी अधर्म धरा पर, करने को संग्राम ।
ले अवतार दयानिधि ले अवतार दयानिधि हरते दुःख तमाम ॥
जय जय — सीतापति राम ॥
आर्तनाद सुनकर तज देते, निज वाहन विश्राम ।
नंगे पाँओं धाते, नंगे पाँओं धाते करने जन का काम ॥
जय जय — सीतापति राम ॥
विषय वासना की वैतरणी बढ़ती जब अविराम ।
तब तरणी बन जाता, तब तरणी बन जाता, एक आपका नाम ॥
जय जय — सीतापति राम ॥
जय जलधर—सम—श्याम, राम हे लोचन—ललित ललाम ।
"मोहन" के नयनों में, 'मोहन' के नयनों में, बसो नयन अभिराम ॥
जय जय — सीतापति राम ॥

—: o :—

—ॐ इति ॐ—